जुलाई-दिसंबर, 2013
ISSN:2320-7736

सत्यमेव जयते

विज्ञान गरिमा सिंधु

संयुक्तांकः 86-87

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

ISSN 2320-7736

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

संयुक्तांक - 86-87
(जुलाई-सितंबर, 2013)
तथा
(अक्टूबर-दिसंबर, 2013)

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

अध्यक्ष की कलम से...

आयोग की त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका का अंक 86-87 (संयुक्तांक) पाठकों के सामने प्रस्तुत करते समय हर्ष हो रहा है। 'विज्ञान गरिमा सिंधु' के माध्यम से शब्दावली आयोग ने अपनी निर्मित शब्दावली का प्रचार-प्रसार निरंतर रूप से किया है साथ ही विज्ञान को हिंदी माध्यम से अपने पाठकों तक संप्रेषित करते हुए विज्ञान प्रसार जैसा महत्वपूर्ण कार्य किया है।

प्रस्तुत अंक में रसायन विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भौतिकी एवं कृषि विज्ञान आदि विषयों से संबंधित ज्ञानवर्धक तथा शोधपरक लेख सम्मिलित किए गए हैं। आयोग का कर्तव्य है कि भारतीय भाषाओं के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान का श्रेष्ठतम साहित्य छात्र वर्ग, अनुसंधानकर्ताओं और आम आदमी तक पहुँचाना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शब्दावली आयोग कई योजनाओं का कार्यान्वयन लगातार कर रहा है, जैसे–विभिन्न वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों में शब्दावली व परिभाषा-कोशों का निर्माण, विश्वविद्यालय स्तरीय पुस्तकों, संदर्भ-ग्रंथों और संपूरक साहित्य का निर्माण, शब्दावली कार्यशालाओं का आयोजन, इत्यादि। ये सभी कार्य मुख्य रूप से शिक्षा के माध्यम में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए प्रारंभ किए गए हैं। इन कार्यों की शृंखला में तथा निश्चित लक्ष्यों की पूर्ति में द्रुत गति लाने के लिए आयोग ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में दो त्रैमासिक पत्रिकाओं 'विज्ञान गरिमा सिंधु ' और 'ज्ञान गरिमा सिंधु' का नियमित रूप से प्रकाशन कर रहा है ताकि छात्रों और पाठकों को अपनी ही मातृभाषा में ज्ञान-विज्ञान की अत्याधुनिक जानकारी मिल सके।इस समय आयोग में बोड़ो, ओडिया, मणिपुरी भाषाओं की शब्दावली तैयार की गई है तथा कोंकणी और मराठी की शब्दावली का निर्माण किया जा रहा है। अन्य भारतीय भाषाओं में शब्दावली निर्माण का कार्य भी प्रारंभ किया जा चुका है।

'विज्ञान गरिमा सिंधु' पत्रिका के संपादन के लिए विद्वान सदस्यों का योगदान सराहनीय रहा है जिसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ। जिन ख्याति-प्राप्त विद्वानों ने इस पत्रिका के लिए अपने बहुमूल्य अनुभवों को लिपिबद्ध करके लेख रूप में योगदान दिया है, वे भी बधाई के पात्र हैं।

एक लंबे समय से पत्रिका किन्हीं कारणों से समय पर प्रकाशित एवं मुद्रित नहीं हो पा रही थी जिसे इस बार पत्रिका को समय पर प्रकाशित करने की संपादक की पहल पत्रिका को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। अंत में 'विज्ञान गरिमा सिंधु' के संपादक श्री अशोक सेलवटकर आयोग में तकनीकी विषयों की शब्दावलियाँ एवं परिभाषा कोश तथा पाठमालाओं के निर्माण में निरंतर कार्यरत होने के साथ-साथ पत्रिका का संपादन भी निष्ठापूर्वक कर रहे हैं जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

(प्रो. केशरी लाल वर्मा)
प्रधान संपादक
अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

दिसंबर, 2013
नई दिल्ली

संपादकीय

वैज्ञानिक त्रैमासिकी पत्रिका "विज्ञान गरिमा सिंधु" का संयुक्तांक (86-87) पाठकों के सामने रखते हुए हमें हर्ष हो रहा है कि गत कई वर्षों पहली बार यह हो रहा है कि पहली बार पत्रिका का प्रकाशन समय पर हो रहा है।

प्रस्तुत अंक में भारतीय वायुमंडल के प्रदूषण के बारें में विजयकुमार उपाध्याय ने प्रकाश डाला है। इमें भारत के महानगरों में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड व सल्फर डाइऑक्साइड के प्रदूषण की स्थिति से अवगत कराया गया है। 'भारतीय गणित' अध्याय में डॉ. दीपक कुमार श्रीवास्तव ने प्राचीन भारत के गणित से लेकर 12वीं शताब्दी तक के गणित के विकास पर प्रकाश डाला है। जिसमें उसका व्याव्हारिक महत्व विशद किया गया है। कृषि रसायन डॉ. दिनेश मणि ने सदाबहार क्रांति लेख में खाद्य, कृषि तथा ग्रामीण विकास की समस्याओं पर चर्चा की है तो डॉ. एस.पी. सिंह ने प्रोटोजोआ से होने वाले मानव रोगों पर प्रकाश डाला है।

विज्ञान समाचार के अंतर्गत डॉ. दीपक कोहली ने नई वैज्ञानिक जानकारी से अवगत कराया है। डॉ. आर.एस. सेगर ने आधुनिक कृषि के संबंध में पादप हार्मोनों की टयूबराईजेशन के विकास की उपयोगिता के बारें में लिखा है। झूठ डिटेक्शन मशीन के रोचक पहलु डॉ. अग्रवाल ने प्रस्तुत किए है। इसी तरह भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर नामक लेख में किस तरह से भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर कार्य करेंगे व कर सकते है तथा इसका विश्लेषण किया गया है।

उडिया की मोदल तसर रेशम, मत्स्य पालन तथा मूंगफल्ली के वैज्ञानिक खेती जैसे लेखों में लेखकों ने कृषकों के लिए महत्वपूर्ण जानकारी दी है।

शब्दावली विशेषज्ञ सतीश चंद्र सक्सेना ने भारत की वैज्ञानिक धरोहर में प्रो. मेघनाद साह के परिचय व कार्य की जानकारी से वैज्ञानिक जगत को उनकी याद दिलायी है।

विज्ञान गरिमा सिंधु के प्रवेशांक से "गंगा की गरिमा" तत्कालिन प्रसिद्ध भूविज्ञानी प्रो. महाराज नारायण मेहरोत्रा द्वारा लिखित लेख का भी समावेश किया गया है।

अंक को रोचक तथा विज्ञानवर्धक बनाने का हरसंभव प्रयास किया गया है। आशा करता हूँ कि हमेशा की तरह आप सभी भावी अंकों को और अच्छा बनाने के लिए अपने लेख व सुझाव भेजते रहेंगे।

(अशोक सेलवटकर)
संपादक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

जुलाई, 2013
नई दिल्ली

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है– हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी व अन्य छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक सहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, विज्ञान-कथाएं, विज्ञान-समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/– रुपए प्रति हजार शब्द है, तथा न्यूनतम राशि 150 रुपए और अधिकतम राशि 1000 रुपए है। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाता है।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

    अशोक एन. सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्,
    नई दिल्ली – 110066
11. अपने लेख E-mail द्वारा तथा CD में भी (फॉन्ट के साथ) भेज सकते है।
12. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

वेबसाइट : www.cstt.nic.in
कॉपीराइट © 2013
प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली –110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
आयोग, पश्चिमी खंड–7,
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली– 110066
दूरभाष – (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054
E-mail : vgs.cstt@gmail.com

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक-86-87 (संयुक्तांक), जुलाई-दिसंबर, 2013

प्रधान संपादक
प्रो. केशरी लाल वर्मा
अध्यक्ष

संपादक
अशोक सेलवटकर

संपादन सहयोग
देवेंद्र दत्त
नौटियाल
सतीश चन्द्र सक्सेना

प्रकाशन-मुद्रण
डा. धर्मेन्द्र कुमार, स.नि.
आलोक वाही
कलाकार

कर्मचंद शर्मा
प्र.श्रे.लि.

बिक्री एवं वितरण
बी. के. सिंह
वैज्ञानिक अधिकारी

संपर्क सूत्र
संपादक
"विज्ञान गरिमा सिंधु"
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7
आर. के. पुरम, नई
दिल्ली–110066

अनुक्रम पृ. सं.

1.	कितना प्रदूषित है हमारा वायुमंडल?	*डॉ. विजय कुमार उपाध्याय*	1
2.	भारतीय गणित : एक सुनहरा अतीत	*डॉ. दीपक कुमार श्रीवास्तव*	4
3.	सदा बहार क्रांति की ओर	*डॉ. दिनेश मणि*	11
4.	प्रोटोजोआ और मानव-रोग	*डा. एस.पी. सिंह*	16
5.	प्लेग	*डॉ. सी.पी. सिंह*	20
6.	विज्ञान समाचार (तैरनेवाले सौर ऊर्जा संयंत्र)	*डॉ. दीपक कोहली*	22
7.	पादप हार्मोनों की ट्यूबराईजेशन के विकास में उपयोगिता	*डॉ. आर.एस. सेंगर, विवेकानंद प्रताप राय*	26
8.	केला	*जगनारायण*	31
9.	लाई (झूठ) डिटेक्शन मशीन	*डॉ. जे.एल. अग्रवाल*	36
10.	मिर्गी : कारण एवं रोकथाम	*डॉ. हसराज पाल एवं डॉ. आशा पाल*	39
11.	चार्ल्स डार्विन और जीव विकास	*मुकुन्द नीलकंठ जोशी*	41
12.	वनस्पति उद्यान और जैवविविधता – कुछ नये प्रावधान	*नरेश चंद तिवारी*	43
13.	देवनागरी कंप्यूटर	*डॉ. राम प्रसाद सिंह*	48
14.	मोदल – उड़ीसा की एक अद्वितीय तसर रेशम कीट प्रजाति	*डॉ. के. मोहन राव*	50
15.	कैसें आरंभ करें मत्स्य पालन	*डॉ. सुशांत पुणेकर*	54
16.	मूँगफली की वैज्ञानिक खेती मुनाफे का सौदा	*डॉ. वीरेंद्र कुमार*	57
17.	औषधीय महत्व के पौधे	*डॉ. नवीन कुमार बौहरा*	62
18.	प्लास्टिक और पर्यावरण	*डॉ. ए.के. चतुर्वेदी*	71
19.	भारत की वैज्ञानिक धरोहर : *प्रो. मेघनाद साहा*	*सतीश चंद्र सक्सेना*	74

विविध

विज्ञान गरिमा सिंधु : प्रवेशांक से–गंगा की गरिमा	78
समीक्षा	84
लेखक–परिचय	86
आयोग के प्रकाशन	87
ग्राहक फार्म	91
बिक्री केंद्रों की सूची	93

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, अभिव्यक्त विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रकाशित की जाती है।

कितना प्रदूषित है हमारा वायुमंडल ?

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

नेशनल एयर क्वालिटी मॉनेटरिंग प्रोग्राम (एन.ए.एम.पी.) के अंतर्गत सेंट्रल पॉल्युशन कंट्रोल बोर्ड (सी.पी.सी.बी.) द्वारा सन 2007 में वायु गुणवत्ता संबंधी जो आंकडे संकलित किये गये है उनसे पता चला है कि भारत के विभिन्न नगरों में वायु–प्रदूषण घातक स्तर तक पहुंच चुका है। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट ने उपर्युक्त आंकडों का विश्लेषण कर भारत के विभिन्न नगरों में वायु–प्रदूषण के स्तर का आंकलन किया है। इस आंकलन से पता चला है कि भारतीय नगरों में वायुमंडल को प्रदूषित करने वाले प्रमुख घटकों में शामिल है: कणीय पदार्थ (पार्टिकुलेट मैटर), नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड, तथा सल्फर ऑक्साइड। सेंट्रल पॉल्युशन कंट्रोल बोर्ड द्वारा निर्धारित किये गये वर्गीकरण के अनुसार उस वायु को स्वच्छ माना जाता है जिसमें प्रदूषकों का स्तर निर्धारित मानक मान के 50 प्रतिशत से कम होता है।

सर्वेक्षण में शामिल 127 नगरों में से लगभग 80 प्रतिशत नगरों में नमूना प्रदूषकों (क्राइटेरिया पोल्यूटैंट) में से कम से कम एक प्रदूषक वायु के गुणवत्ता मानक के वार्षिक औसत से अधिक परिमाण में मौजूद पाया गया। इसके कारण लोगों का स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। यदि कणीय पदार्थ (पार्टिकुलेट मैटर) के PH_{10} (सांस द्वारा ग्रहण किये जाने योग्यकण) स्तर के दृष्टिकोण से देखा जाय तो भारत के बहुत कम नगरों को ही स्वच्छ कहा जा सकता है। परंतु हाल के कुछ वर्षों में सल्फर डाइ ऑक्साइड का प्रदूषण स्तर कम हुआ है, जबकि कई नगरों के वायुमंडल में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड का स्तर बढ़ा है।

सेंट्रल पॉल्युशन कंट्रोल बोर्ड द्वारा किये गये वर्गीकरण के अनुसार उन नगरों को बहुत अधिक प्रदूषित (क्रटिकली पॉल्युटेड) कहा जाता है जहां नमूना प्रदूषक (क्राइटेरिया पॉल्यूटेंट) का स्तर निर्धारित मानक के डेढ़गुने से अधिक हो। यदि प्रदूषण स्तर मानक के बाराबर से डेढ़गुना से भी अधिक हो। यदि प्रदूषित स्तर मानक के बराबर से डेढ़गुने के बीच हो तो उसे उच्च प्रदूषण कहा जाता है। यदि प्रदूषण स्तर मानक के 50 प्रतिशत मानक के बराबर हो तो उसे सामान्य प्रदूषण कहा जाता है। यदि प्रदूषण स्तर मानक के 50 प्रतिशत से कम हो तो उसे निम्न प्रदूषण कहा जाता है। सन् 2007 में अध्ययन में शामिल 127 नगरों में केवल तीन नगरों (देवास, तिरुपति, तथा कोजिकोड) में निम्न प्रदूषण स्तर दर्ज किया गया।

कणीय पदार्थ द्वारा प्रदूषण की स्थिति

वायुमंडल को प्रदूषित करने वाले कणीय पदार्थ कई प्रकार के पदार्थों के मिश्रण है। इनमें शामिल है– धातु या खनिजों के कण, कालिख के कण तथा मिट्टी से उठने वाले धूल कण, इत्यादि। ये कण विभिन्न आकृतियों तथा आकारों में पाये जाते है। ये प्रदूषक सूखे ठोस कणों, द्रव परत से आवृत ठोस कणों, तथा सूक्ष्म द्रव बूंदों के रूप में पाये जा सकते है। ये कणीय पदार्थ माइक्रोन इकाईयों (एक माइक्रोन = एक मीटर का दस लाखवां अंश) में मापे गये आकार के आधार पर विभिन्न

3563 HRD/15—2A

श्रेणियों में विभाजित किए गये हैं। इनमें प्रमुख दो श्रेणियां है। पहली श्रेणी के कणीय पदार्थों को PH_{10} कहा जाता है जिनमें कणों का आकार 10 माइक्रोन से कम होता है। दूसरी श्रेणी के कणीय पदार्थों को $PH_{2.5}$ कहा जाता है जिनमें कणों का आकार 2.5 माइक्रोन से छोटा होता है। अध्ययनों से पता चला है कि $PH_{2.5}$ तथा PH_{10} कण हमारी सांस नली में आसानी से प्रवेश कर फेफड़ों तक पहुंच जाते है जिससे फेफड़े तथा हृदय से संबंधित अनेक प्रकार के रोग पैदा हो सकते है। संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रोटेक्शन एजेंसी (ई.पी.ए.) द्वारा निर्धारित मानक के अनुसार वायुमंडल में PH_{10} का वार्षिक औसत स्तर 20 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर से अधिक नहीं होना चाहिए। जबकि $PH_{2.5}$ का वार्षिक औसत स्तर 12 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर से अधिक नहीं होना चाहिए।

सन 2007 में नेशनल एयर क्वालिटी मॉनिटरिंग प्रोग्राम के अंतर्गत जो अध्ययन एवं सर्वेक्षण किये गये उसके अनुसार 63 भारतीय नगरों में पार्टिकुलेट मैटर द्वारा वायु के प्रदूषण का स्तर बहुत अधिक (क्रिटिकली पोल्यूटेड) अर्थात् मानक के डेढ़ गुने से अधिक पाया गया। जबकि 36 नगरों में उच्च प्रदूषण (वार्षिक औसत मानक के 1 से 1.5 गुना के बीच) तथा सिर्फ 19 नगरों में सामान्य प्रदूषण (अर्थात मानक के 0.5 से 7 गुने के बीच), पाया गया। उत्तरी भारत के दिल्ली, नोएडा, तथा फरीदाबाद जैसे कुछ नगरों में PH_{10} का उच्च स्तर पाया गया तथा विगत कुछ वर्षों के दौरान यह स्तर बढ़ता ही गया है। केवल कुछ पर्वतीय शहरों जैसे शिमला, गजरौला तथा परबानू में PH_{10} का निम्न स्तर (अर्थात मानक के 50 प्रतिशत से कम) पाया गया। पूर्वी और पश्चिमी भारत में मिली–जुली स्थिति पायी गई। उदाहरण के तौर पर शिलौंग, अंगुल, राउरकेला तथा हावड़ा जैसे पूर्वी नगरों में सन् 2000 से लेकर 2007 के बीच PH_{10} का स्तर बढ़ता हुआ पाया गया जबकि अहमदाबाद, रोलापुर, नागदा तथा जामनगर जैसे पश्चिमी नगरों में उस दौरान PH_{10} का स्तर घटता हुआ पाया गया। परंतु मुम्बई, कोटा तथा सतना में PH_{10} का स्तर ऊंचा पाया गया। हालांकि दक्षिण भारत के अधिकांश नगरों में उत्तर भारत के नगरों की अपेक्षा PH_{10} का स्तर कम पाया गया, परंतु हैदराबाद, विशाखापट्नम्, तूतीकोरिन, तथा बंगलोर में PH_{10} का स्तर ऊंचा पाया गया। कोच्ची, तिरुअनंतपुरम तथा मैसूर में PH_{10} का स्तर तेजी से घटता पाया गया। सन् 2007 में भारतीय नगरों में केवल 2 प्रतिशत में ही PH_{10} के आधार पर वायुमंडल स्वच्छ पाया गया।

भारतीय नगरों में नाइट्रोजन डाइ-ऑक्साइड प्रदूषण की स्थिति

भारतीय नगरों में नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड द्वारा वायु प्रदूषण की समस्या एक बहुत बड़ी चुतौती बन कर उभरी है। सन् 2007 में आवासीय क्षेत्रों में स्थित 7 मॉनिटरिंग स्टेशनों तथा औद्योगिक क्षेत्रों में स्थित एक मॉनिटरिंग स्टेशन में नाइट्रोजन डाइ-ऑक्साइड का स्तर वार्षिक औसत मानक स्तर से ऊंचा पाया गया। आवासीय क्षेत्रों में जिन सात मॉनिटरिंग स्टेशनों पर नाइट्रोजन डाइ-ऑक्साइड की माप की गई उनमें शामिल थे (1) दिल्ली में टाउन हॉल (82 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर), तथा सरोजनी नगर (85 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर), (2) कलकत्ते में साल्ट लेक (66 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर), मैनाली (76 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर), तथा मिंटो पार्क (65 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर), (3) पटना में गांधी मैदान में (67 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर, तथा (4) हावड़ा में घुसेरी (68 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर) औद्योगिक क्षेत्र में जिस स्थान के मॉनिटरिंग स्टेशन पर माप की गई, उसमें शामिल था हावड़ा का बंधा घाट (91 माइक्रोग्राम प्रति मीटर)।

उत्तरी भारत के दिल्ली, देहरादून, यमुना नगर तथा लुधियाना में नाइट्रोजन डाइ-ऑक्साइड स्तर में वृद्धि की प्रवृत्ति देखी देखी गई। हावड़ा कोलकाता, धनबाद, जमशेदपुर तथा झरिया जैसे पूर्वी भारत के नगरों में

3563 HRD/15—2B

उत्तरी भारत के नगरों की अपेक्षा नाइट्रोजन डाइ-ऑक्साइड का स्तर बहुत ऊंचा पाया गया है। हालांकि इन नगरों में सन् 2004 के पूर्व नाइट्रोजन डाइऑक्साइड के स्तर में ह्रास की प्रवृत्ति दिखायी पड़ी थी, परंतु सन् 2004 के बाद यह स्तर पुनः बढ़ने लगा। दक्षिण भारत के नगरों, विशेषकर विशाखापटनम्, हैदराबाद तथा तिरुअनंतपुरम में नाइट्रोजन डाइ-ऑक्साइड के स्तर में वृद्धि की प्रवृत्ति दर्ज की गई। पश्चिम भारत के अधिकांश नगरों में नाइट्रोजन डाइ-ऑक्साइड का स्तर या तो स्थिर दिखायी पड़ा या उसमें ह्रास की प्रवृत्ति दिखायी पड़ी। परंतु मुम्बई, नागपुर, नासिक, पुणे तथा चंद्रपुर में नाइट्रोजन डाइ-ऑक्साइड के स्तर में वृद्धि दर्ज की गई।

भारतीय नगरों में सल्फर डाइआक्साइड द्वारा प्रदूषण की स्थिति :

आजकल भारत में सल्फर डाइऑक्साइड द्वारा वायु प्रदूषण को कोई बड़ी समस्या नहीं माना जाता। अधिकांश नगरों में इसका स्तर बहुत कम है तथा इसमें लगातार ह्रास की प्रवृत्ति दिखायी पड़ रहीं है। परंतु खुर्जा, नासिक जमशेदपुर तथा चंद्रपुर जैसे कुछ नगर ऐसे हैं जहा इसकी उपस्थिति 45 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर पाई गई।

सन् 2007 में आवासीय या औद्यागिक क्षेत्रों में स्थित किसी भी मॉनिटरिंग स्टेशन पर सल्फर डाइ आक्साइड का स्तर नेशनल ऐंबिमेंट एयर क्वालिटी स्टैंडर्ड से अधिक नहीं पाया गया। औद्योगिक क्षेत्रों के 79 प्रतिशत मॉनिटरिंग स्टेशनों तथा आवासीय क्षेत्रों के 93 प्रतिशत मॉनिटरिंग स्टेशनों पर सल्फर डाइऑसाइड का स्तर 20 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर से कम पाया गया। आवासीय क्षेत्र में सल्फर डाइऑक्साइड का सबसे ऊंचा स्तर खुर्जा में पाया गया। परंतु किसी भी मॉनिटरिंग स्टेशन में वार्षिक औसत मानक स्तर से ऊंचा स्तर दर्ज नहीं किया गया।

2

भारतीय गणित : एक सुनहरा अतीत

डॉ. दीपक कुमार श्रीवास्तव

पृथ्वी पर प्राप्त सभी सभ्यताओं ने गणित में अपना कुछ–न–कुछ योगदान दिया है। कुछ स्थितियों में यह गणित एक सभ्यता से दूसरी सभ्यता तक पहुंची परंतु अधिकतर स्थितियों में अनेकों सभ्यताओं द्वारा विकसित गणित दूसरी सभ्यताओं तक न पहुंच सकी। वर्तमान में जिस अंतरराष्ट्रीय गणित का प्रचलन है उसका अपना एक अलग इतिहास है। इसकी जड़ें प्राचीन मिश्र और बेबीलोनिया से निकली तथा प्राचीन यूनान में बहुत तीव्रता से आगे बढ़ी। प्राचीन ग्रीक भाषा में लिखी गई गणित को पहले अरबी में परिवर्तित किया गया। बाद में यही गणित लातिन भाषा में भी परिवर्तन की गई जिसे पश्चिमी यूरोप ने ज्यो का त्यों अपना लिया। कई सौ वर्षों के उपरांत यही गणित संपूर्ण विश्व द्वारा स्वीकार की गई।

विश्व में कई दूसरे ऐसे स्थान हैं जहां से उच्च स्तरीय व अर्थपूर्ण गणित का उदय हुआ, जिनमें चीन, दक्षिण भारत तथा जापान प्रमुख हैं। यहां विकसित हुई गणित का अपना एक अलग महत्व है परंतु दूसरे कई स्थानों पर विकसित हुई गणित वर्तमान में प्रचलित अंतरराष्ट्रीय गणित को प्रभावित न कर सकी। बाद में इन स्थानों पर इनकी अपनी पारंपरिक व परंपरागत गणित के स्थान पर उसी गणित का विकास हुआ जो अतरराष्ट्रीय गणित थी। इस प्रकार धीरे–धीरे गणित में महत्वपूर्ण परिवर्तन एवं योगदान होते रहे जो अंतरराष्ट्रीय गणित का तर्कपूर्ण आधार बना। यह प्रक्रिया प्राचीन ग्रीस में यूक्लिड के गणित में दिए गए योगदान के बाद शताब्दियों तक जारी रही। मनुष्य के पास गणितीय तर्कपूर्ण आधार के रूप में एक ऐसा हथियार आ गया जिससे वह अज्ञात विषयों के बारे में जानकारी प्राप्त करने लगा।

तत्पश्चात्, गतिण अंतहीन रूप से निरंतर व उत्तरोत्तर तीव्र गति से विकसित होती चली गई तथा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में इसका प्रयोग लगातार बढ़ता गया जो आज भी अबाध रूप से जारी है।

भारतीय गणित

सभी प्राचीन सभ्यताओं में सर्वप्रथम मनुष्य ने वस्तुओं की गणना हेतु संख्याओं का प्रयोग करना शुरू किया। प्राचीन समय में संख्याओं को प्रदर्शित करने के लिए आड़ी तिरछी रेखाओं के समूह का प्रयोग किया गया। इसी दौरान भारतीय सभ्यता में गणना हेतु चिह्नों (1, 2, 3.....) का संख्याओं के रूप में प्रचलन शुरू हुआ। उसी समय रोम (इटली) में गणना हेतु वर्णमाला के अक्षरों का प्रयोग किया जा रहा था। आज हम अपने दशमलव सिद्धांत को बहुत ज्यादा महत्व नहीं देते हैं जबकि भारतीय सभ्यता के अलावा किसी भी सभ्यता में उन संख्याओं का प्रयोग नहीं किया गया जो कि दस–आधार सिद्धांत पर आधारित थे। प्राचीन बेबीलोनिया में उस समय हेक्सा दशमलव (आधार 60) का प्रचलन था।

हड़प्पा में दशमलव सिद्धांत

भारत में दशमलव सिद्धांत हड़प्पा सभ्यता के दौरान से ही प्रचलन में था जो कि हड़प्पा सभ्यता के ऐतिहासिक विश्लेषण से स्पष्ट होता है। संख्याओं 1, 2, 3, 100, 200, 300.... तथा दशमलव संख्याओं 0.05, 0.1, 0.2.... आदि का प्रयोग भार तथा माप के लिए लगातार

किया जा रहा था। इन संख्याओं तथा दशमलव सिद्धांत का प्रयोग करके वस्तुओं के भार एवं विमाओं की माप सही प्राप्त करना इस सभ्यता की महान उपलब्धियों में शुमार होता है। उस समय 0.367 इंच बिंदुओं वाली यूनिट की कांसे की छड़ का प्रयोग माप पैमाने के रूप में प्रचलित था। इस पैमाने को कस्बों के विकास एवं सड़कों की नियत चौड़ाई, नालियों की गहराई, घरों आदि की एकदम सही पैमाइश हेतु किया जाता था। इन संख्याओं तथा दूसरे गणितीय सिद्धांत ने व्यापार तथा वाणिज्य में इसके सफल प्रयोग से हड़प्पा सभ्यता को एक विकसित सभ्यता में तबदील कर दिया जिसका इतिहास गवाह है।

वैदिक अवधि में गणितीय गतिविधियां

वैदिक अवधि में गणित से जुड़ी गतिविधियों की जानकारी अधिकतर वैदिक ग्रंथों तथा धार्मिक रीति–रिवाज़ों से संबंधित लेखों में मिलती है। हालाकि, कृषि पर आधारित सभ्यताओं की तरह अंकगणित और ज्यामिति का अध्ययन राष्ट्रवादी मान्यताओं द्वारा प्रेरित था। अतः भारत में प्रारंभिक गणितीय विकास मिश्र, बेबीलोन तथा चीन में विकसित गणित से मिलता–जुलता है। भूमि अनुदान तथा कृषि कर निर्धारण करने हेतु खेती योग्य जमीन के क्षेत्रफल के निश्चित माप की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। भूमि निर्धारण करने वाले शासक व प्रबंधक आयताकार व त्रिभुजाकार खेतों को वर्गाकार रूप में बदलने के लिए ज्यामिति तथा उनके क्षेत्रफल को ज्ञात करने के लिए अंकगणित का प्रयोग उन्मुक्त रूप से करने लगे। जिससे किसानों को उनकी पकी फसल का उचित मूल्य मिलने लगा तथा शासकों को निर्धारित कर प्राप्त होने लगा। इस प्रकार गणित धीरे–धीरे राष्ट्रवादी तथा रीति–रिवाज़ों के दायरे में मनुष्य के कार्यकलापों में मददगार सिद्ध होने लगी।

अंकगणित की क्रियाएं जैसे योग, घटाना, गुणा, अनुपात, वर्ग, घन, वर्गमूल तथा घनमूल आदि का जिक्र *वेद व्यास* (1000 बी.सी. पूर्व) संबंधित *नारद विष्णु पुराण* में मिलता है। ज्यामिति (रेखा गणित) संबंधित उदाहरण *बौधयान* (800 बी.सी. पूर्व) तथा *अपस्थमाबा* (600 बी.सी. पूर्व) की *सल्वा–सूत्र* में मिलते हैं जिसमें वैदिक अवधि के दौरान धार्मिक रीति–रिवाज़ों से
करने की विधियां बताई गई हैं। *बौधा*
मूलभूत ज्यामिति संरचना तथा एक ज्य
(जैसे आयात) से उसी क्षेत्रफल वाली दू
संरचना (जैसे वर्ग) में परिवर्तित करने की वि
थी। इसमें कुछ सूत्र लगभग समान मान प्रदत्त
वाले तथा कुछ एकदम सही मान प्रदत्त करने वा
जो कि आधारभूत ज्यामिति सिद्धांतों के आधार प
ऐसा प्रतीत होता है कि *सल्वा–सूत्र* में बताई
विधियां ही आधुनिक युग में चल रही योग तथा गुणा
विधियों की जनक हैं।

ग्रीक गणितज्ञ एवं प्रसिद्ध दार्शनिक पाइथागोरस (छठी शताब्दी, बी.सी.) भारतीय उपनिशदों के बारे में जानता था और उसने प्रारंभिक ज्यामिति का ज्ञान *सल्वा–सूत्र* से ही अर्जित किया। उसके द्वारा सिद्ध की गई प्रमेय, जिसे आज 'पाइथागोरस प्रमेय' के नाम से जाना जाता है, वह *बौधयान* की *सल्वा–सूत्र* में पहले से ही मौजूद थी, "किसी वर्ग के विकर्ण के लंबवत् खींची जाने वाली किसी जीवा पर बनने वाले वर्ग का क्षेत्रफल दो गुना होता है।"

इनके सूत्र, एक चर वाली रेखीय समीकरण का ज्यामितीय हल भी बताते हैं। उदाहरणार्थ, द्विघातीय समीकरण के हल। अपस्थमाबा के सूत्र (जो कि बौधयान के मूल योगदान का विस्तार है) संख्या 2 के वर्गमूल का मान दशमलव के पांचवें स्थान पर शुद्ध बताते हैं। अपस्थमाबा ने वृत्त को वर्ग में परिवर्तित करने की, किसी रेखाखंड को सात बराबर भागों में बांटने की तथा व्यापक रेखीय समीकरण का हल प्राप्त करने जैसी गणितीय समस्याओं पर ध्यान दिया। छठवीं शताब्दी (बी.सी.) के प्राप्त जैन अभिलेखों में सूर्य पृज्ञापति द्वारा दीर्घवृत्त के बारे में भी बताया गया है।

आधुनिक गणितज्ञ पूर्व में बताए गए व निकाले गये कई गणितीय परिणामों पर मतैक्य नहीं है। कुछ का विश्वास है कि यह गणितीय परिणाम अंदाज पर आधारित है या कुछ उदाहरणों के व्यापकीकरण द्वारा प्राप्त किए गए हैं। जबकि कुछ का मानना है कि इनकी

में दी गई वैज्ञानिक पद्धति पर
वह शायद समय बीतने के साथ खो
गए या उन्हें शब्दों के उच्चारण द्वारा
ते के अनुसार बताया गया होगा तथा
परिणाम को ही लेखों में दर्ज किया गया
जो भी माना जाए, वैदिक काल में गणित
न को अत्यधिक महत्व दिया गया इस बात से
नहीं किया जा सकता। *वेदांग ज्योतिष* (1000
।.) के कथनानुसार, "जिस प्रकार मोर पंखी मोर के
र पर तथा नागमणि नाग के माथे पर शोभित होती
है, उसी प्रकार गणित का स्थान वेदों व शास्त्रों में बताई गई सभी विधाओं में सर्वोपरि है।" कई शताब्दियों बाद, मैसूर के जैन गणितज्ञ महावीराचार्य ने गणित के महत्व को इस प्रकार उजागर किया– "पृथ्वी पर प्राप्त होने वाली किसी भी चलायमान या अचलायमान वस्तु को गणित की आधारभूत जानकारी के बिना समझना असंभव है।"

पाणिनी तथा औचारिक वैज्ञानिक संकेत

छठी शताब्दी ई. पू., भारतीय विज्ञान के इतिहास में होने वाले महत्वपूर्ण विकास ने गणितीय विधाओं में गहरी छाप छोड़ी तथा यह परिवर्तन पाणिनी द्वारा संस्कृत व्याकरण एवं भाषा में किए गए उच्चकोटि के कार्यों के कारण संभव हो सका। पाणिनी ने अपनी पुस्तक में फोनेटिक्स, फोनोलॉजी तथा मॉर्फोलोजी शाखाओं की वैज्ञानिक अवधारणाओं का बिना प्रयोग किए अपने नियमों तथा परिभाषाओं का प्रयोग संस्कृत व्याकरण में किया जो 'अष्टाध्याई' कहलाई। आधारभूत अवयवों जैसे स्वर तथा व्यंजन, संज्ञा तथा सर्वनाम आदि को अलग–अलग वर्णित किया गया है। इसमें शब्दों तथा वाक्यों की रचना हेतु विशेष नियमों को बताया गया है जो कि पुरानी भाषा अवधारणा से मिलता–जुलता है।

वर्तमान समय में पाणिनी की रचनाओं की गणितीय फलन की नवीन परिभाषा से तुलना की जा सकती है। जी. जी. जोजेफ ने अपनी पुस्तक *क्रेस्ट ऑफ द पीकॉक* में यह कहा है कि भारतीय गणित का बीजगणितीय रूप संस्कृत भाषा के रूप से ही सृजित है। इंगरमेन ने अपने शोध–पत्र *पाणिनी–बेकास रूप* में यह कहा है कि पाणिनी के चिह्न बेकस के चिह्नों के घात रूप के समान है। बेकस उस अभिलंब रूप का जनक है जो आधुनिक कंप्यूटर भाषा को पारिभाषित करता है। इस प्रकार पाणिनी का कार्य वैज्ञानिक निरूपण प्रतीक का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है जो बाद के गणितज्ञों को बीजगणितीय समीकरणों तथा प्रमेयों को वैज्ञानिक पृष्ठभूमि हेतु बनाने के लिए अपने सार संकेतों का प्रयोग कर सकने का बल मिल सका।

दर्शनशास्त्र तथा गणित

गणितीय अवधारणा एवं सूत्रीकरण के विकास में दार्शनिक सिद्धांतों का गहरा प्रभाव पड़ा। विश्व के उपनिषदीय दृष्टिकोण की तरह *जैन बृहमांडिकी* में भी समष्टि तथा समय को सीमा–विहीन माना गया है। जिसने बड़ी संख्याओं तथा अनंत संख्याओं को पारिभाषित करने में गहरी रूचि को उत्पन्न किया। अनंत संख्याओं को अनुपयोग द्वारा सूत्र की तरह प्रतिवर्तन सूत्रों के द्वारा उत्पन्न किया गया। जैन गणितज्ञों द्वारा पांच प्रकार के अनंत को मान्यता प्रदान की गई – एक दिशा में, दो दिशाओं में, क्षेत्रफल में, सर्वत्र अनंत तथा निरंतर अनंत। क्रमचय तथा संचय, *भगवती सूत्र* (तीसरी शताब्दी ई.पू.) तथा *साथनांग सूत्र* (दूसरी शताब्दी ई.पू.) में सूचीबद्ध हैं।

जैन मीमांसा की स्यादवाद प्रणाली के समांतर जैन समुच्चय सिद्धांत का संभवतः उदय हुआ जिसमें वास्तविकता को सही शर्तों तथा स्थिति परिवर्तन के रूप में बताया गया। अनुयोग द्वारा सूत्र ने आधार अंकों के नियम को समझने का तरीका बताया जिसके द्वारा आगे चलकर लघुगणक के भावों का विकास हुआ। अर्ध शूल, त्रिक शूल तथा चतुः शूल का प्रयोग क्रमशः लघुगणक आधार–2, आधार–3 और आधार–4 के लिए किया गया। *सतखंडगामा* में समुच्चयों पर लघुगणक फलन आधार–2 के प्रयोग को वर्ग एवं वर्गमूल लेकर तथा सीमित व असीमित घात लेकर समझाया गया है। इस प्रक्रिया को पुनः प्रयुक्त करते हुए नए समुच्चयों को निकाला गया है। दूसरे शोधकार्यों में संख्याओं के

संयोग को द्विपद प्रसार में प्रकट होने वाले गुणांकों से संबंधित पाया गया। जैन मीमांसा में अनिश्चितता के प्रकार को सत्यता समझने को स्वीकारा, जिसने संभवतः अनिश्चित समीकरणों तथा अपरिमेय संख्याओं के संख्यात्मक सन्निकट मान को समझने में बड़ी मदद की।

बौद्ध साहित्य में भी अनिश्चित तथा अनंत संख्याओं के बारे में बताया गया है। बौद्ध गणित का गर्ण (सामान्य गणित) या सांख्यान (उच्च गणित) में वर्गीकरण किया गया था। संख्याओं को तीन प्रकार का माना गया– संख्याएं (जो गिनी जा सकें), संख्याएं (जो गिनी न जा सकें) तथा अनंत संख्याएं। शून्य से संबंधित *दर्शन शास्त्र* के सूत्रों द्वारा अर्थात् रिक्त स्थान को शून्य की अवधारणा के आधार पर परिभाषित किया गया। जबकि *संख्या पद्धति* में रिक्त स्थान के लिए शून्य (बिंदु) के प्रयोग का प्रचलन पूर्व में हो चुका था। शून्य की बीजगणितीय परिभाषा और इसका गणितीय फलनों से संबंध ब्रह्मगुप्त की शोध पुस्तक (सातवीं शताब्दी ए.डी.) में प्रकट हुआ। भारत में शून्य के प्रचलन के मुद्दे पर विद्वान दो भागों में विभक्त थे, कुछ का मत था कि शून्य आर्यभट्ट के समय से था जबकि कुछ विद्वान शून्य की उत्पत्ति गुप्त साम्राज्य के अंत के समय से मानते हैं। सातवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में भारतीय संख्या पद्धति तरह–तरह के गणितीय फलनों एवं चिह्नों (जैसे धन, ऋण, वर्ग, वर्गमूल आदि) सहित अपने आधुनिक रूप में उभरकर सामने आई जिसने आधुनिक गणितीय संकेतों की आधारशिला रखी।

भारतीय अंक पद्धति

यद्यपि चीनी गणना पद्धति पर आधारित दशमलव का प्रयोग कर रहे थे, परंतु वह भारतीय अंक चिह्न पद्धति के लालित्य से औपचारिक रूप से अनभिज्ञ थे। यह वही भारतीय अंक चिह्न पद्धति थी जो आगे चलकर अरब से होती हुई पूरी पश्चिम की दुनिया द्वारा अंततः स्वीकार की गई। इस प्रगति के पीछे छिपे हुए कारणों का अभिप्राय सही अर्थों में फ्रांसीसी गणितज्ञ द्वारा निकाला गया है, लाप्लास के अनुसार, "सभी संभव संख्याओं को दस चिह्नों के समुच्चय द्वारा दर्शाने की उत्तम विधि का उद्भव सर्वप्रथम भारत में हुआ। इस पद्धति की सरलता के चलते, आजकल इसके अभिप्राय एवं गहरे महत्व की कोई तारीफ नहीं करता। गणना की सरलता एवं महत्वपूर्ण खोजों में अंकगणित का महत्व इस पद्धति की सहजता को दर्शाता है।"

भारत में इस अंक पद्धति के उद्भव का कारण कोई अतिश्योक्ति या दुर्घटना नहीं है। पश्चिम की दुनिया में जटिल रोमन गणना पद्धति एक बड़ा अवरोध थी, तथा चीन में प्रयुक्त चिह्न पद्धति भी अपने आप में एक बाधा थी। जबकि उस समय भास्त में लगभग सब कुछ इस अंक पद्धति की प्रगति के पक्ष में था। यहां दशमलव संख्याओं के प्रयोग का एक लंबा एवं स्थापित इतिहास था तथा दार्शनिकी एवं ब्रह्मांडिकी में रचनात्मक प्रयासों से संख्याओं के सिद्धांत में बहुमूल्य प्रयास हुए। पाणिनी ने कला एवं वास्तूकला में भाषा मूलक सिद्धांत तथा औपचारिक भाषा एवं प्रतीकों द्वारा प्रकट होने तथा प्रतिनिधित्ववादी पृथकीकरण के सशक्त योगदान का अध्ययन किया तथा बताया कि इनके द्वारा न्यायसूत्र के तर्कबुद्धिपरक सिद्धांतों तथा ज्ञानमीमांसा की सच्चाई, स्यादवाद के लिए नवीन है। पृथकीकरण को एवं ज्ञान के बुद्ध स्कूलों को समझने की प्रेरणा मिलती है।

व्यापार एवं वाणिज्य का प्रभाव, खगोल शास्त्र का महत्व

व्यापार एवं वाणिज्य जिसमें क्रय एवं विक्रय प्रमुख था, की प्रगति में साधारण एवं चक्रबृद्धि ब्याज के ज्ञान का विशेष महत्व है जिसके कारण ही लोगों का ध्यान अंकगणित एवं गुणोत्तर श्रेणी को समझने की ओर आकर्षित हुआ। बृह्मगुप्त के ऋण संख्याओं को कर्ज व धन संख्याओं को धन प्राप्ति से जोड़ने से संबंधित सिद्धांत ने व्यापार को गणितीय ज्ञान से जोड़ने का कार्य किया। खगोलीय ज्ञान जिसमें ज्वार–भाटा तथा सितारे प्रमुख थे, उन व्यापारियों के लिए बहुत महत्वपूर्ण

था जो रात में समुद्र के रास्ते या रेगिस्तान के रास्ते यात्रा करते थे। ऐसा जातक कथाओं एवं अन्य लोक कथाओं में दिए गए संदर्भों से प्रतीत होता है। इसलिए उस समय जो भी नवयुवक व्यापार करने की हिम्मत जुटा पाते थे उनके लिए खगोलीय ज्ञान का रखना अति आवश्यक था जो इसी अंक पद्धति पर आधारित था। व्यापार में खगोलीय ज्ञान की आवश्यकता के चलते खगोलशास्त्र के शिक्षकों की आवश्यकता पड़ी। इन शिक्षकों द्वारा कुसुमपुर (बिहार) या उज्जैन (मध्य भारत) या स्थानीय महाविद्यालयों या गुरुकुल में खगोलीय ज्ञान का प्रशिक्षण प्राप्त किया गया। इस प्रगति के चलते ही खगोलीय तथा गणितीय ज्ञान का आदान–प्रदान एवं प्रसार छात्रों के बीच तथा देश के एक भाग से दूसरे भाग में हुआ। वास्तविक रूप से भारत के प्रत्येक राज्य से महान गणितज्ञों ने जन्म लिया जिनके द्वारा उनके समय के या पूर्व के गणितज्ञों के कार्य की विस्तृत समीक्षा लिखी गई। संस्कृत भाषा ने इस वैज्ञानिक आदान–प्रदान में सशक्त योगदान प्रदान किया।

ऋतु निर्धारण, जलवायु की समझ, फसल की बुवाई आदि की जानकारी हेतु सटीक पंचांग तैयार करने की आवश्यकता महसूस की गई जिसके चलते खगोलीय विज्ञान की प्रगति एवं प्रसार को प्रोत्साहन मिला। उसी समय धर्म तथा ज्योतिष ने भी खगोलशास्त्र में रुचि पैदा करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और इस तर्कहीन प्रभाव का एक नकारात्मक नतीजा था कि उस समय के वैज्ञानिक सिद्धांतों को अस्वीकृत किया गया जो समय की मांग से बहुत आगे थे। गुप्त अवधि के महानतम वैज्ञानिक आर्यभट्ट (जिनका जन्म 476 ए.डी. में कुसुमपुर, बिहार में हुआ था) ने अंतरिक्ष में ग्रहों की स्थिति का एक व्यवस्थित रूप प्रस्तुत किया। जिससे पृथ्वी के अक्षीय घूर्णन एवं दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में ग्रहों की सही स्थिति के बारे में लोगों को पता चला। उन्होंने सूर्य के प्रकाश से परिलक्षित ग्रहों, सूर्य ग्रहण एवं चंद्र ग्रहण का सही वैज्ञानिक कारण बताया जिसने लोगों को अंधविश्वास एवं ग्रहों पर आधारित अन्य कुरीतियों से बाहर निकालने का कार्य किया। हालाकि भास्कर प्रथम (जन्म छठी शताब्दी, सौराष्ट्र, अस्माक स्कूल ऑफ सांइस, निज़ामाबाद, आंध्र प्रदेश के अनुयायी) ने अपनी प्रतिभा और वैज्ञानिक योगदान के जबरदस्त मूल्यों को मान्यता दी। बाद के खगोलविदों ने स्थिर पृथ्वी को अपने विश्वास को बनाए रखा तथा उनके ग्रहणों से संबंधित तर्कसंगत स्पष्टीकरण को ख़ारिज कर दिया। परंतु इस तरह के झटकों के बावजूद, आर्यभट्ट का उन खगोलविदों व गणितज्ञों पर गहरा प्रभाव था जो उनके सिद्धांतों को मानते थे या अस्माक स्कूल के अनुयायी थे।

गणित ने आर्यभट्ट की सौर प्रणाली की क्रांतिकारी समझ में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उसकी पाई (π) की गणना, पृथ्वी की परिधि (62,832 मील) तथा सौर वर्ष की लंबाई (आधुनिक गणना के अनुसार लगभग 13 मिनट के भीतर) उल्लेखनीय करीबी गणनाएं हैं। इन गणनाओं को करते हुए आर्यभट्ट को कई ऐसी गणितीय समस्याओं को हल करना पड़ा जो पूर्व में बीजगणित व त्रिकोणमिति में कभी भी हल नहीं की गई थी।

आर्यभट्ट ने जहां पर छोड़ा, वहां से भास्कर प्रथम ने प्रारंभ किया तथा ग्रहों के देशांतर के रूप में चमकदार सितारों के साथ ग्रहों का संयोजन, ग्रहों की वृद्धि तथा स्थिति एवं चंद्र वर्धमान आदि की विस्तार से चर्चा की। पुनः इस प्रकार के अध्ययन को आधुनिक गणित के ज्ञान की आवश्यकता हुई तथा भास्कर प्रथम ने आर्यभट्ट द्वारा दी गई त्रिकोणमिति समीकरण का विस्तार किया और उसके द्वारा की गई पाई (π) की करीबी गणना को और सही किया। उसने आर्यभट्ट द्वारा पाई (π) को अपरिमेय बताए जाने को भी सत्य सिद्ध किया। उसकी महत्वपूर्ण खोजों में से एक ज्यां फलन है जिसका मान 99% तक सही था। उसके अग्रणी कार्यों में अनिश्चित समीकरणों तथा प्रथम बार लिया गया चतुर्भुज था जिसकी चारों भुजाएं असमान व आमने–सामने की भुजाएं असमानांतर थी।

वारहमिहिर (छठी शताब्दी, उज्जैन) एक अन्य महत्वपूर्ण खगोलविद् एवं गणितज्ञ था। जिसने

खगोलशास्त्र में पूर्वलिखित तथ्यों का संकलन किया तथा आर्यभट्ट द्वारा निकाले गए त्रिकोणमितिय सूत्रों में और योगदान किया। उसने जैन गणितज्ञों द्वारा क्रमचय और संचय पर किए गए कार्य को आगे बढ़ाया और nCr के गणना की विधि को बताया जो वर्तमान में पास्कल त्रिकोण से करीबी समानता रखती है। सातवीं शताब्दी में ब्रह्मगुप्त ने बीजगणित के बुनियादी सिद्धांतों को सूचीबद्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। शून्य के बीजगणितीय गुणों को सूचीबद्ध करने के अलावा उसने ऋणात्मक संख्याओं को भी सूचीबद्ध किया। इयूलर और लागरेंज का कार्य द्विघातीय अनिश्चित समीकरणों के मूलों पर आधारित ब्रह्मगुप्त के कार्य की प्रत्याशा में था।

कलन का उदय

चंद्रग्रहण के सटीक मानचित्रण के विकास की जरूरत के चलते आर्यभट्ट ने सूक्ष्मता की संकल्पना को जन्म दिया। इस सूक्ष्मता सिद्धांत यानि सूक्ष्मता को नामित करने वाली तात्कालिक गति, या चंद्रमा की तात्कालिक गति के करीब को आधारभूत अवकल समीकरण में व्यक्त किया। आर्यभट्ट के समीकरणों को मंजुला (10वीं शताब्दी) तथा भास्कराचार्य (12वीं शताब्दी) द्वारा विस्तार से स्पष्ट किया गया था जिन्होंने ज्यां फलन के अवकजली को सर्वप्रथम सिद्ध किया था। बाद के गणितज्ञों ने अपनी अतःमन की अवधारणा का प्रयोग करके समाकलन की समझ को विकसित किया तथा इसका उपयोग करके वक्राकार सतहों का क्षेत्रफल एवं उनसे घिरे हुए स्थान के आयतन को निकाला।

व्यावहारिक गणित, प्रायोगिक समस्याओं का हल

त्रिकोणमितीय तालिकाओं एवं माप मात्रकों का बनना व्यावहारिक गणित के विकास के कुछ उदाहरण है। यतीव्रसभा (छठी शताब्दी) के कार्य तिलोयापन्नति ने कई तरह के दूरी एवं समय से संबंधित मात्रकों को प्रदान किया तथा अनंत समयमापी निकाय को भी समझाया।

नौवीं शताब्दी में महावीराचार्य (मैसूर) ने गणित सार संग्रह लिखा जिसमें उन्होंने किसी संख्या के निम्नतम उभयनिष्ठ गुणनफल (एल.सी.एम.) की वर्तमान गणना को समझाया। उन्होंने दीर्घवृत्त के क्षेत्रफल एवं किसी वृत्त में चतुर्भुज के क्षेत्रफल निकालने का सूत्र भी स्थापित किया। नौवीं शताब्दी में ही अनिश्चित समीकरणों को हल करने को लेकर गणितज्ञों में दिलचस्पी उत्पन्न हुई जिसके फलस्वरूप कुछ अनिश्चित समीकरणों के संपूर्ण एवं करीबी हल गणितज्ञों द्वारा निकाले गए। नौवीं शताब्दी के अंत में श्रीधर (जो कि संभवतः बंगाल से थे) ने कई प्रायोगिक समस्याओं जैसे साधारण ब्याज, मिश्रण, क्रय या विक्रय आदि की गणना हेतु गणितीय सूत्र प्रदान किए। इसमें से कुछ उदाहरणों के हल वाकई जटिल थे तथा उसकी रचना पातिगणिता को उन्नत गणितीय कार्य माना गया है। इस रचना के कुछ खंड अंकगणित तथा गुणोत्तर श्रेणी पर आधारित थे जिनमें भिन्नात्मक संख्याओं की श्रेणी एवं कुछ परिमित श्रेणियों के योग प्रमुख थे। दसवीं शताब्दी में भी गणितीय खोजें जारी रहीं। विजयनंदी (जो बनारस के थे, जिनकी रचना करनतिलक को अल–बरूनी द्वारा अरबी में अनुवादित किया था) तथा श्रीपति (महाराष्ट्र) इस शताब्दी के प्रसिद्ध गणितज्ञों में शुमार थे।

बारहवीं शताब्दी के अग्रणी गणितज्ञों में भास्कराचार्य प्रमुख थे जो उज्जैन स्थित खगोलीय वेधशाला के प्रमुख भी थे। इन्होंने कई महत्वपूर्ण रचनाएं लिखीं जिनमें लीलावती व बीजगणित तथा खगोलशास्त्र पर लिखी गई सिद्धांत शिरोमणि मुख्य हैं। इन्होंने ही सर्वप्रथम यह पहचाना कि द्विघातीय समीकरण के अधिकतम दो मूल हो सकते हैं। इनकी अनिश्चित समीकरणों को हल करने की चक्रवात विधि, कई शताब्दियों के बाद निकाली गई यूरोपीय हल के समान थी। अपनी रचना सिद्धांत शिरोमणि में इन्होंने प्रतिपादित किया कि पृथ्वी के इर्द–गिर्द एक गुरुत्वाकर्षण शक्ति है तथा सूक्ष्मता की गणना एवं समाकलन की सीख दी। इस निबंध रचना के द्वितीय भाग में इनके द्वारा कई अध्याय, गोले एवं उसके गुणों तथा भूगोल, ग्रहों की

3563 HRD/15—3A

गति, ग्रहों की दृश्यता, मौसम, ग्रहण आदि के प्रयोगों पर आधारित थे। इन्होंने अपनी इस रचना में खगोलीय यंत्रों तथा गोलीय त्रिकोणमिति की भी चर्चा की। इनके द्वारा दिए त्रिकोणमिति सूत्रों में कुछ निम्न हैं–

$$\sin(a + b) = \sin a \cos b + \cos a \sin b;$$
$$\sin(a - b) = \sin a \cos b - \cos a \sin b$$

भारतीय गणित का प्रसार

मुस्लिम आक्रमणकारियों के भारत आने तथा विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों को मुस्लिम मदरसों में तेजी से बदलने के कारण गणित में होने वाली प्रगति में उतार आया। परंतु यह वो वक़्त था जब भारतीय गणित को अरबी तथा फारसी में तेजी से अनुवादित किया जा रहा था। हालांकि अरब के विद्वान मुख्यतः बेबीलोनियन, सीरियाक, ग्रीक एवं चीनी पुस्तकों पर निर्भर थे, तब भी भारतीय गणित पर आधारित पुस्तकों ने अपनी महती भूमिका निभाई। ईब्न तारिक़ तथा अल–फजरी (आठवीं शताब्दी, बगदाद), अल–किंडी (नौवीं शताब्दी, बसरा), अल–ख़्वारिज़्मी (नौवीं शताब्दी, ख़िवा), अल–क़ायरवानी (नौवीं शताब्दी, मघरेब, किताब फी अल–हिसाब अल–हिंदी के लेखक), अल–उकलिदिसी (दसवीं शताब्दी, दमस्कस), भारतीय अंकगणित पर लिखी गई पुस्तक का लेखक), इब्न–सिना (ऐविसेन्ना), ईब्न अल–सम्ह (ग्रनड, ग्यारहवीं शताब्दी, स्पेन), अल–नसावी (खुरसन, ग्याहरवीं शताब्दी, परशिया), अल–बरूनी (ग्यारहवीं शताब्दी, जन्म–ख़िवा, मृत्यु–अफगानिस्तान), अल–रज़ी (तेहरान) तथा ईब्न–अल–सफ्फार (ग्यारहवीं शताब्दी, कौरबोडा) कुछ उन विद्वानों के नाम हैं जिन्होंने अनुवादित भारतीय गणित को अपने अध्ययन का आधार बनाया। भारतीय मूल के कई साक्ष्य, अवधारणाएं और अनुप्रयोगों के अभिलेख बाद की शताब्दियों में आते–आते छिपते चले गए। परंतु भारतीय गणित में किए गए भारी योगदान को उदारता से बहुत सारे अरबी तथा परशियन विद्वानों मुख्यतः स्पेन में स्वीकार किया गया। अब्बासिद विद्वान अल–गहेठ ने लिखा है– "भारत ज्ञान, विचारों तथा अंतर्दृष्टि का स्रोत है।" पश्चिमी भारत का भ्रमण करने वाले अल–मौदी (956 ए.डी.) ने भी भारत में वैज्ञानिक विकास की महानता के बारे में लिखा है। ग्याहरवीं शताब्दी के स्पेनिश विद्वान व इतिहासकार ने विशेष रूप से भारतीय सभ्यता की महानता को विज्ञान और गणित में प्राप्त हुई उपलब्धियों के साथ जोड़ते हुए बहुत जागरूकता के साथ विशेष रूप से की हुई अपनी टिप्पणी में बताया है। इसे मानने में कोई शक नहीं है कि भारतीय बीज–गणित एवं त्रिकोणमिति अरब के रास्ते स्पेन और सिसिली होते हुए यूरोप पहुंची तथा वहां उसका व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ। उसी समय ग्रीक तथा मिश्र के वैज्ञानिक ज्ञान का अनुवादित रूप भारत में सरलता के साथ उपलब्ध था।

○○○

3563 HRD/15—3B

3

सदाबहार क्रांति की ओर

डॉ. दिनेश मणि

एक वक्त था जब भारत में लोग अनाज की कमी के चलते सप्ताह में एक दिन उपवास रखा करते थे ताकि रोटी का कुछ अंश दूसरों को मिल सकें, आज करोड़ों भारतीयों के और बढ़ जाने के बावजूद हम दूसरों को खिलाने में सक्षम हो गए हैं। इस प्रकार आज हम न केवल अपना पेट भर रहे हैं, बल्कि हमारे देश के गोदामों में इतना अनाज भरा पड़ा है कि किसी भी प्राकृतिक आपदा का मुकाबला किया जा सकता है।

कृषि और संबंद्ध क्षेत्र में मिली महत्वपूर्ण उपलब्धियों से संतुष्ट होकर नहीं बैठा जा सकता क्योंकि आबादी आज भी निरंतर बढ़ रही है, रासायनिक उर्वरकों और सिंचाई के पानी के अविवेकपूर्ण उपयोग से काफी भूमि बंजर हो गई हैं, भूमि और जल संसाधन सीमित हैं, तथा अंतरराष्ट्रीय कृषि व्यापार में अपनी जगह बनाए रखना कठिन हो गया है। इक्कीसवीं सदी में पर्यावरण को कोई नुकसान पहुंचाये बिना, खाद्यान्न उत्पादन को अपेक्षित स्तर तक पहुंचाना एक कठिन चुनौती है।

ऐसा अनुमान है कि वर्ष 2025 तक खाद्यान्न की कुल मांग 291 मिलियन टन तक पहुंच जाएगी जिसमें 109 मिलियन टन चावल की, 91 मिलियन टन गेहूं की, 73 मिलियन टन मोटे अनाजों की और 18 मिलियन टन दालों की मांग होगी।

खेती के लिए नई भूमि मिलना तो दूर पहले से उपलब्ध भूमि का क्षेत्रफल भी घटता जा रहा है। इसके अलावा ग्रीन हाउस गैसों के कारण होने वाला जलवायु परिवर्तन और वैश्विक तापन की समस्या भी कृषि पर बड़े खतरे के रूप में मंडरा रही है। सिंचाई के लिए पानी का अभाव भी एक बड़ा संकट बनने की ओर है।

हम एक ऐसी समस्या का सामना कर रहे हैं जो सीमाओं में नहीं बंधी है और तुरंत समाधान मांगती है। इससे निपटने के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हल खोजने होंगे। हमें ज्यादा अन्न भी पैदा करना है और मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को नष्ट होने से भी बचाना है। हमें ज्यादा पशु भी पालने हैं, पर अंधाधुंध चराई के कारण चरागाहों को बंजर भी नहीं होने देना है। हमें ज्यादा मछलियां भी प्राप्त करनी हैं और जीवनदायी जलस्रोतों को बरबादी से बचाना है। तभी हम गरीबी और कुपोषण को कम करके, उनकी कोख में पलने वाली हिंसा को निरस्त कर पाएंगे।

हरित क्रांति के परिणामस्वरूप भारत सहित विश्व के विभिन्न भागों में अन्य फसलों के साथ–साथ मक्का, ज्वार और सोया फसलों की उपज और उत्पादन क्षमता काफी बढ़ी है। कुछ देश जो हरित क्रांति से पहले इन उत्पादों की कमी से त्रस्त थे, अब न केवल इन खाद्यान्नों के मामले में आत्मनिर्भर हैं, वरन इनका निर्यात करने में भी सक्षम हैं। इन तथ्यों के साथ यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि हरित क्रांति की अपनी सीमाएं हैं। इसमें आर्थिक लाभ के स्थान पर केवल उपज बढ़ाने पर ही विशेष जोर दिया गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि परंपरागत खाद्यान्न उत्पादन वाले क्षेत्रों में हरित क्रांति का सदैव लाभकारी प्रभाव ही नहीं पड़ा कहीं–कहीं इसका प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ा है। उदाहरण के तौर पर हरित क्रांति के कारण अधिक पूंजी खपाने वाली प्रौद्योगिकियों का विकास हुआ जिनके परिणामस्वरूप उपलब्ध मानव शक्ति तथा विपुल संसाधनों का उपयोग ही नहीं हो पाया। इसके अलावा हरित क्रांति से विकसित प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप निवेशों के अत्यधिक उपभोग के कारण हमारे नाजुक पारिस्थितिक तंत्र का संतुलन बिगड़ गया और कुछ क्षेत्रों के भौतिक पर्यावरण पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। कहीं–कहीं तो खाद्यन्न के विषाक्त हो जाने की घटनाएं भी घटित हुई है।

निःसंदेह हमने खाद्यन्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है परंतु महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या कृषि क्षेत्र में हमारी ये उपलब्धियां आने वाले वर्षों में भी बरकरार होगी? क्या हमारी खेती पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी को नुकसान पहुंचाए बिना भविष्य में बढ़ती हुई जनसंख्या को पोषित करने में सक्षम होगा? कृषि की वर्तमान प्रणाली यानी हरित क्रांति के बाद की प्रणाली आर्थिक विकास की ऐसी नीति पर आधारित है जिसमें व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए उच्च उत्पादकता पर जोर दिया जाता रहा है। इसके अंतर्गत कृषि योग्य भूमि पर सघन खेती करने, एक ही फसल के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र का विस्तार, कीटनाशियों, उर्वरकों के इस्तेमाल पर जोर दिया गया है, इससे जैव विविधता कम हुई है। जल और भूमि संसाधनों में गिरावट आई है और पर्यावरण प्रदूषण बढ़ा है। अब यह महसूस किया जाने लगा है कि हमने कृषि के क्षेत्र में उपलब्धियों की एक बड़ी कीमत चुकाई है।

खाद्य, कृषि तथा ग्रामीण विकास की समस्याएं

इनसे संबंधित सबसे पहली समस्या है कृषि की कीमत पर औद्योगिक प्रगति को बढ़ावा देने वाली नीतियों का अपनाया जाना। शहरी जनसंख्या को सस्ते मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिए खाद्यान्न के आयात की नीति अपनाई गई जिसके कारण विभिन्न देशों की अपनी खेती की सुरक्षा समाप्त हो गई। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि खाद्यान्न का आयात करने से पहले यह सुनिश्चित कर लिया जाए कि इसके कारण देश में खाद्यान्न की खेती पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और देश के किसानों को उनकी उपज का उचित व लाभकारी मूल्य मिलता रहे। दूसरी समस्या है– कृषि क्षेत्र में व्यापारिक उत्पादों (कच्चे माल और निर्यात किए जाने वाले उत्पादों) और परंपरागत खाद्य उत्पादों में पारंपरिक द्वंद्व की स्थिति। अतः ऐसी नीतियां बनाई जानी चाहिए जिनसे इन दोनों की प्रतिस्पर्धा समाप्त हो सके और परंपरागत खाद्य उत्पाद तथा व्यापारिक उत्पाद का निर्यात योग्य उत्पाद एक दूसरे के पूरक हो सकें।

सुप्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम.एस. स्वामीनाथम ने सन् 1968 में आयोजित इंडियन साइंस कांग्रेस के अधिवेशन में दिए गए अपने व्याख्यान में इन शब्दों में अपने विचार व्यक्त किए थे– "अगर सिर्फ पैदावार बढ़ाने के या तात्कालिक लाभ के इरादे से मिट्टी का दोहन करने वाली कृषि अपनाई गई तो उसके भयंकर खतरे हो सकते हैं भारत में हर तरह की खेती करने वालों को यह ध्यान रखना होगा कि मिट्टी की उर्वरता और उसकी बनावट के संरक्षण के बगैर वे सघन खेती करते चले गए तो अंत में रेगिस्तान उभरने लगेंगे। जल, निकास की व्यवस्था के बिना सिंचाई करते चले गए तो मिट्टियां क्षारीय और लवणीय हो जाएंगी।

कीटनाशी फफूंदनाशी और खरपतवारनाशी दवाओं के अंधाधुंध इस्तेमाल से अनाज के दानों और पौधों के भोज्य भागों में जमा इन जहरीले रसायनों के अवशेष प्रकृति के जैव संतुलन को तो बिगाड़ेंगे ही कैंसर और अन्य रोगों का प्रकोप भी बढ़ाएंगे। युगों से हो रही प्राकृतिक कृषि ने हमें भूजल के रूप में संसाधन की जो अमूल्य पूंजी दी है, उसका अवैज्ञानिक ढंग से अति दोहन होता रहा तो वह बड़ी तेजी से कम होती चली जाएंगी। स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल असंख्य परंपरागत किस्मों की जगह आसपास के विशाल क्षेत्र में एक या दो अधिक उपजशील किस्में ही बोई गई तो ऐसे पौध–रोग पनप सकते हैं जो पूरी की पूरी फसल चौपट कर दें जैसे सन् 1854 में आयरलैंड में आलू की खेती के नष्ट होने से अकाल पड़ गया था क्योंकि अकाल से

पहले वहां सब लोग आलू की एक ही किस्म की खेती कर रहे थे। बंगाल में सन् 1942 के धान के अकाल में भी यही हुआ। इसलिए परपंरागत कृषि में प्रत्येक परिवर्तन के परिणामों की गहरी समझ के बिना अगर हम सघन खेती से पैदावार बढ़ाने में लगे रहे और उससे पहले हमने इसे टिकाऊ बनाए रखने वाला वैज्ञानिक प्रशिक्षण को उचित आधार नहीं बनाया तो हम आगे चलकर कृषि में समृद्धि के विकास के बजाय कृषि के विनाश के चंगुल में फंस जाएंगे।

हमें सदाबहार क्रांति (एवर्ग्रीन रिवाल्यूशन) की आवश्यकता है। यानी, पर्यावरण को हानि पहुंचाए बगैर लगातार उत्पादकता बढ़ाते जाना। इस सदाबहार हरित क्रांति को प्राप्त करने का रास्ता है जैविक खेती या हरित कृषि। हरित कृषि में पर्यावरण हितैषी कृषि विधियां अपनाई जाती है, जैसे कि एकीकृत प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन। हमें लगातार पर्याप्त खाद्यन्न मिलते रहें, इसके लिए जरूरी है कि कृषि की उत्पादकता और लाभप्रदता में प्रगति को निरंतर बनाए रखने के लिए आवश्यक मिट्टी, पानी और जैव विविधता की पारिस्थितिक बुनियाद को संरक्षित और प्रवर्धित करते रहें।

हरित क्रांति वैज्ञानिक हुनर, राजनीतिक इच्छाशक्ति और किसानों की कठिन मेहनत का योगफल है। इसी के बूते सबके हिस्से में खाना आया है और आज जब हम अपने अनाज विदेश भेजते हैं, तो हरित क्रांति की सार्थकता का अहसास हो जाता है। हमारे देश में खाद्य सुरक्षा का कानूनी अधिकार है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक के द्वारा देश में उपजे अनाजों को हर नागरिक तक पहुंचाने की बात है। हालांकि, 90 के दशक के बाद खाद्य उत्पादन में गिरावट आई है। यह व्यापक तौर पर महसूस किया जाने लगा कि हरित क्रांति की चमक फीकी पड़ने लगी है। यह भी सच है कि इन्हीं दशकों में कृषि विकास की राह में कई पर्यावरणीय व आर्थिक समस्याएं खड़ी हो गई हैं। ऐसे में कोई शक नहीं कि अगर कृषि अर्थनीति बिगड़ती है या उसे नज़रअंदाज किया जाता है और पर्यावरण के साथ कुछ भी बुरा होता है, तो खेती–किसानी के क्षेत्र में कुछ भी अच्छा नहीं हो सकता। इसी बुनियादी तथ्य को हम भूल रहे हैं कि "हरित क्रांति" शब्द का इस्तेमाल उत्पादकता के मार्ग के माध्यम में उत्पादन में सुधार के लिए भी किया जाता रहा है।

वर्तमान समय में जब खेती के रकबे सिकुड़ते जा रहे हैं, जब भूजल की कमी महसूस की जा रही है तब हमारे पास कम–से–कम ज़मीन और पानी की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में अधिक–से–अधिक उत्पादन की जरूरत है और इसके लिए देश में एक और हरित क्रांति करनी होगी।

हरित क्रांति के परिणामस्वरूप प्रारंभ में गेहूं और चावल में उत्पादकता के हिसाब से आशातीत प्रगति हुई किंतु वर्ष 1995–96 के आते–आते हरित क्रांति में थकान के चिह्न कृषिजगत में स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे थे। इनमें गिरता उत्पादन और उर्वरकों के अत्यधिक इस्तेमाल से होने वाले प्रतिकूल प्रभाव प्रमुख थे।

पिछले 10 वर्षों से हरित क्रांति को विराम–सा लगता प्रतीत होता है। खाद्यन्न उत्पादन की दर जनसंख्या वृद्धि की दर से काफी नीचे चली गई हैं। इससे सबके लिए भोजन के हमारे स्वप्न को साकार करने के प्रयास से खाने वालों की संख्या ज्यादा तेजी से बढ़ रही है। वर्ष 2015 तक कृषि उत्पादन को दुगुना करने का लक्ष्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जब कृषि में वार्षिक दर 8 से 10 प्रतिशत तक हासिल की जाए। इसे प्राप्त करने के लिए समन्वित, समयबद्ध एवं प्रभावी नियोजन के साथ नई पहल किए जाने की आवश्यकता है।

"हरित क्रांति" शब्द न केवल उच्च उत्पादकता द्वारा अधिक उत्पादन से है, बल्कि अनेक नकारात्मक पारिस्थितिकीय और सामाजिक परिणामों से जुड़ा है। अनेक बार उपज के स्तर में ठहराव की स्थिति भी देखने को मिलती है।

यदि हम अपनी कृषि अनुसंधान और विकास रणनीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर सकते हैं तो हम इस स्थिति में हैं कि स्थायी हरित क्रांति की शुरूआत कर सकते हैं जो हमें भूमि और पानी की प्रति इकाई उपज, आय और जीविका उपलब्ध कराने में सहायक होगी। स्थायी हरित क्रांति उपलब्ध भूमि, जल और श्रम साधनों से अधिक उपज प्राप्त करके लाई जाएगी। यह क्रांति न तो पर्यावरण को और न समाज को कोई नुकसान पहुंचाएगी।

सुप्रसिद्ध कृषि विज्ञान डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में गठित राष्ट्रीय कृषक आयोग ने अब तक जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किए हैं उनमें ज्ञान की तकनीकी कमियों को पूरा करना, लाभ देने वाले तंत्रों को मजबूत करना, संसाधन उपयोग का अधिकाधिक इस्तेमाल करना और सामाजिक लाभों को हर तबके तक बराबर पहुंचाना प्रमुख संस्तुतियां रही हैं।

कृषि में नवीकरण कार्यक्रम में रचनात्मक सुधार के अंतर्गत निम्नलिखित छह बिंदुओं को सम्मिलित किया गया है–

1. मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार
2. सिंचाई जल के विकास एवं कुशल उपयोग पर रणनीति
3. लघु एवं सीमांत कृषिकों के जीवन निवर्हन हेतु कार्यक्रम
4. ऋण एवं बीमा संबंधी कार्यक्रम
5. शस्योत्तर पोस्ट हार्वेस्ट तकनीक और मूल्य संवर्द्धन आधारित तकनीकी का विकास
6. उत्पादन आधारित किसान सुलभ विपणन व्यवस्था का विकास।

कृषि नवीकरण के अंतर्गत विभिन्न कृषि पारिस्थितिकीय इकाइयों को चिह्नित किया गया है जिसमें शुष्क, पर्वतीय, समुद्री और सिंचित क्षेत्रों के विकास को आधार बनाते हुए परिणामी योजनाएं बनाई जाएंगी। भारत सरकार के अतिरिक्त इस महत्वपूर्ण लक्ष्य को पूरा करने में राज्य सरकारें, पंचायती राज संस्थाएं, कृषि, पशुपालन, ग्रामीण एवं महिला विश्वविद्यालय, भारतीय तकनीकी संस्थान, निजी व सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाएं सक्रिय रूप से प्रतिभागिता करेंगी।

धान और गेहूं की बोनी प्रजातियां और मक्का, बाजरा तथा सफेद बाजरा की संकर प्रजातियों से अनाज उत्पादन में भारी वृद्धि हुई है। उपज के अंतर का विश्लेषण करने से पता चलता है कि अभी इन फसलों की उपज बढ़ाने की पूरी संभावना का लाभ नहीं लिया जा सका है। उदाहरण के लिए धान में वर्तमान प्रजातियों की खेती की उपज 40 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है। इसी तरह गेहूं की पैदावार का राष्ट्रीय औसत 2.5 टन प्रति हेक्टेअर है जबकि यह आसानी से 4 टन प्रति हेक्टेअर हो सकती है। भविष्य में ऐसी प्रजाति के बीज और पौध तैयार किए जाने चाहिए जो कीटों और बीमारियों से अधिक–से–अधिक प्रतिरोध कर सकें और मिट्टी के खारेपन, सूखा और तेज गर्मी जैसे अजैव असंतुलनों को सहन करने की क्षमता रखते हों। इस तरह भविष्य में अनुसंधान द्वारा संकर बीजों की आनुवांशिक उपज बढ़ाने के प्रयास किए जाने चाहिए।

सफलता सुहानी होती है लेकिन इसके लिए लगन, कठिन परिश्रम, सहयोग और समन्वय की आवश्यकता होती है। सफलता के लिए सभी संसाधनों से बढ़कर है व्यक्ति और इच्छाशक्ति। समस्त चुनौतियों का समाधान परंपरागत व्यावहारिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के थालमेल से संभव हैं। स्थान विशेष से जुड़ी समस्याओं के समाधान और प्राकृतिक संसाधनों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए अनुसंधान और प्रसार व्यवस्था के समन्वय और संवर्द्धन की आवश्यकता है।

उत्पादन प्रक्रिया में प्राकृतिक संपदा एवं पर्यावरण का अधिकाधिक दोहन वर्तमान विकास प्रारूप की प्रमुख विशेषता रही है। इससे आगामी विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

यदि इसी प्रकार का जीवन व्यवहार बना रहा तो भविष्य अवश्य ही अंधकारमय है। परंतु प्रत्येक परिस्थिति

विकल्पयुक्त होती है। अतः वर्तमान अंधकारयुक्त भविष्य के भी विकल्प हैं। भविष्य को विकल्प के अनुसार स्थानांतरित किया जा सकता है। इसके लिए सामूहिक उत्तरदायित्व एवं सबल प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। यह भी आवश्यक है कि मूल्यों, नीतियों और सामाजिक संस्थाओं में तदनुरूप परिवर्तन हों। यहां यह उल्लेखनीय है कि साधन उपयोग में दक्षता, सम्यक् प्रौद्योगिकी एवं उपभोग ढांचे में परिवर्तन सतत् विकास की आवश्यक शर्तें हैं जो कृषि क्षेत्र पर भी लागू होती हैं।

टिकाऊ विकास की क्रियाविधि में प्राकृतिक संसाधनों की बुनियादी भूमिका है। यह प्राकृतिक संसाधनों के मितव्ययी उपयोग की अपेक्षा करता है। इसके केंद्र में वर्तमान और आगामी पीढ़ियों की जरूरते हैं। दृष्टि यह है कि प्रत्येक मनुष्य एवं प्रत्येक पीढ़ी प्रकृति से तादात्म्य के साथ स्वस्थ और उत्पादक जीवन के लिए अधिकृत है। विकास प्रक्रिया का यह दायित्व है कि वर्तमान पीढ़ी के लिए स्वस्थ और उत्पादक जीवन की दशाएं सुनिश्चित करे और आगामी पीढ़ी की इस संभावना में कोई कमी न करें।

ooo

4

प्रोटोजोआ और मानव–रोग

डॉ. एस.पी. सिंह

मानव जाति को प्रभावित करने वाले अधिकांश रोग, रोगजनक जीवों द्वारा होते हैं। जीवाणुओं, प्रोटोजोआ, कवक, विषाणु, हेल्मिन्थ कृमि और आर्थ्रोपोड की परजीवी जातियों में से कुछ मानव–जाति में रोगजनक होती है। रोगजनक जीव कुछ रोगवाहक जीवों द्वारा मनुष्यों में पहुंचाए जाते हैं। उदाहरणार्थ मलेरिया परजीवी मच्छरों द्वारा मनुष्य में पहुंचाया जाता है।

प्रोटोजोआ के सभी वर्गों में परजीवी जातियां पाई जाती हैं। मानव–शरीर में ऐसी लगभग 15 जातियां पाई जाती है। इनमें से अधिकांश ऐसी है जिनका अपने परपोषियों पर तो अपेक्षाकृत कम प्रभाव होता है, ये मनुष्यों में अत्यंत भयानक रोग उत्पन्न करते हैं। इनमें से अधिक महत्वपूर्ण परजीवियों का वर्णन निम्नलिखित है–

अमीबता (एमिबाइएसिस)

एमिबाइएसिस को 'अमीबी पेचिश' भी कहा जाता है। यह सार्कोडिना वर्ग के ऐन्टअमीबा हिस्टोलाइटिका (चित्र–1) के द्वारा उत्पन्न होता है। इसके ट्रोफोजाइट परपोषी की बड़ी ऑत की भित्ति में घुसकर ऊतकलयी (हिस्टोलिइटिक) एन्जाइम का स्राव करते हैं और आंत की भित्ति की कोशिकाओं को खाते है, जिसमें फुन्सियां बन जाती है। ये फुन्सियां फूटकर आंत में रुधिर और श्लेष्मा छोड़ती है जो मल के साथ बाहर आने लगते है। कुछ विशेष परिस्थितियों में ये ट्रोफोजोइट यकृत, फुफ्फुस और मस्तिष्क में भी पहुंच जाते हैं और फुन्सियां बना देते हैं।

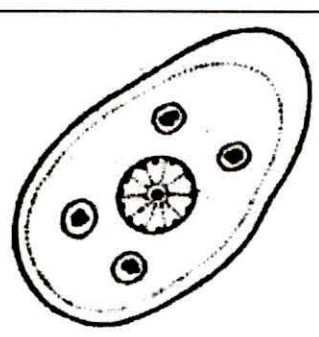

चित्र–1 एन्टअमीबा हिस्टोलिटिका

इस परजीवी के जीवन चक्र में मध्यस्थ परपोषी नहीं होता है। एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में इस परजीवी का पारगमन चतुष्केंद्रकी पुटियों (सिस्ट) द्वारा होता है। पुटी निर्माण से पूर्व इसका ट्रोफोजोइट एक छोटी माइनूटा आकृति में बदलता है। इसके पश्चात् यह पुटीभूत होकर चतुष्केंद्रकीय पुटी बनाता है। ये पुटियां मल के साथ बाहर आने के बाद भोजन तथा जल को संदूषित कर देती है और नए परपोषियों में संक्रमण फैलाती है। ये पुटियां घेरलू मक्खियों द्वारा तेजी से फैलाई जाती है। घेरलू मक्खियां खुले खाद्य पदार्थों पर बैठती है और संक्रमणकारी पुटियां छोड़ जाती है। यह संक्रमित खाद्य पदार्थ ही मनुष्य में एमिबाइएसिस या अमीबी पेचिश रोग फैलाता है।

अमीबी पेचिश गर्म देशों में स्थानिक होता है। एमेटिन, फ्यूमैजिलिन, एरिथ्रोमाइसिन, मैट्रोनिडेजोल, इत्यादि औषधियों से इस रोग में शीघ्र लाभ होता है।

प्रवाहिका (डायरिया)

यह एक कशाभी (फ्लैजिलैट) परजीवी, जिआर्डिया या लैम्ब्लिआ (चित्र–2) के द्वारा उत्पन्न होता है। पतले दस्त होना इस रोग का लक्षण है। यह परजीवी छोटी आंत में रहता है। इसका शरीर नखाकार होता है, जिसकी पृष्ठ सतह उत्तल तथा निचली सतह चपटी होती है और अगले सिरे पर कुछ गहरी एक चूषण खांच होती हैं। इसमें दो केंद्रक और चार जोड़ी कशाभ

होते हैं, जो सममितीय रूप से व्यवस्थित रहते हैं। यह परजीवी द्विखंडन द्वारा शीघ्रता से गुफन करता है और आंत में उपस्थित भोजन में से अमीनों अम्लो और विटामिनों को खाता है। इसमें आंत्रीय अनियमितताएं हो जाती जिससे जठर पीडा, उदरीय बेचैनी, भूख का कम होना और सिर दर्द होने लगता है।

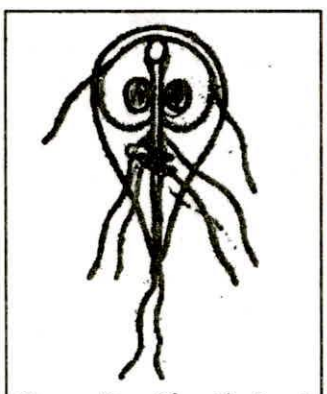
चित्र–2 जिआर्डिया (लैमब्लिया)

इस परजीवी का पारगमन पुट्टियों द्वारा होता है जो मल के साथ बाहर आती हैं और भोजन या जल के साथ नए परपोषियों में प्रवेश कर जाती है। जिआर्डिया का संक्रमण वयस्कों की अपेक्षा बच्चों में अधिक होता है। इसकी चिकित्सा में क्लोरोक्वीन, कैमोक्वीन, एटेब्रिन इत्यादि दवाएं प्रभावकारी है।

ट्रिपैनोसोमता (ट्रिपैनोसोमिएसिस)

यह रोग ट्रिपैनोसोमा की जातियों द्वारा उत्पन्न होता है। ट्रिपैनोसोमा की ये जातियां अपने कशेरुकी परपोषी के रुधिर में तथा अकशेरुकी परपोषी को आहार नाल में परजीवी होती है। ये अन्य सभी रोगजनक प्रोटोजोआ से अधिक भयंकर होती है। अफ्रीका के कटिबंधीय भाग में निद्रारोग मनुष्यों का भयंकर रोग है।

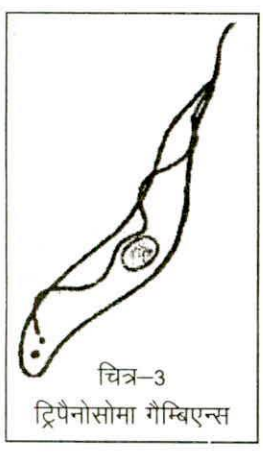
चित्र–3
ट्रिपैनोसोमा गैम्बिएन्स

इस रोग का जनक कारक ट्रिपैनोसोमा गेम्बिएन्स (चित्र–3) है और इसका पारगमन एक मक्खी ग्लोसीना पाल्पोलिस द्वारा होता है। लसीका तंत्र में संक्रमण होने से ग्रंथि सूजने लगती है, जो निद्रारोग का लक्षण होता है। इसके पश्चात् ये परजीवी प्रमस्तिष्क और मेरुद्रव में प्रवेश कर जाते हैं जिसके कारण मस्तिष्क में क्षति होती है और निद्रारोग की भंयकर अवस्था उत्पन्न हो जाती है। यदि इसकी चिकित्सा नहीं की जाती है तो रोगी की मृत्यु हो जाती है। इसके द्वारा रुधिर में संक्रमण होने पर जर्मेनिन एवं लोमीडीन का और मस्तिष्क में संक्रमण होने से ट्रिपर्सेमाइड दवाओं का उपयोग किया जाता है।

ट्रिपैनोसोमा क्रूजाई अमेरिकन ट्रिपैनोसोमिएसिस या चागा रोग को उत्पन्न करता है। यह परजीवी दक्षिण और मध्य अमेरिका में दूर तक प्राणियों में पाया जाता है और इसका अपेक्षाकृत बच्चों में अधिक पाया जाना सामान्य है। इसका पारगमन ट्रायाटोमा वंश के खटमलों द्वारा होता है। मनुष्य में इसका पारगमन खटमलों के काटने से न होकर उसके मल के द्वारा होता है। शरीर के विभिन्न भागों पर सूजन होना, सिर में जोर का दर्द होना और ज्वर को निरंतरता इस रोग के लक्षण है। रक्तहीनता और हृदयपेशियों की क्षति होने पर मृत्यु हो जाती है। अभी तक इसकी कोई स्थायी चिकित्सा नहीं हो पाई है। अस्थायी तौर पर इससे राहत के लिए प्राइमाक्वीन और प्यूमरोमाइसिन का प्रयोग किया जाता है।

लीशमैनियता (लीशमैनिएसिस)

यह रोग लीशमैनिया की जातियों द्वारा उत्पन्न होता है। जो कशाभी परजीवी होती है और कशेरुकी प्राणियों के अंगों की भक्षाणु–कोशिकाओं तथा कीटों की आहारनाल में परजीवी होती है। लीशमैनिया डोनोवनी (चित्र–4) काला अजार या लीशमैनिएसिस का कारक होता है। यह रोग भारत, दक्षिण चीन और भूमध्यसागरीय देशों में दूर–दूर तक फैला है। इस परजीवी द्वारा अंतःस्वर तंत्र के अवरुद्ध हो जाने के कारण प्लीहा का पर्याप्त रूप से बढ़

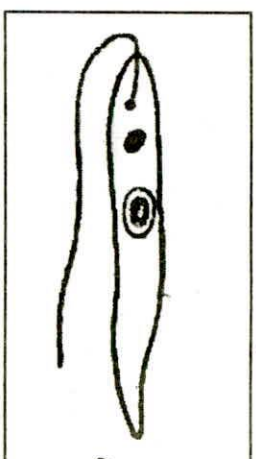
चित्र–4
लीशमैनिया डोनोवेकाइ

3563 HRD/15—4A

जाना इस रोग का मुख्य लक्षण है। यदि इस रोग की उचित चिकित्सा नहीं की जाती है तो प्रायः घातक होता है। ऐन्टिमनी यौगिकों से इस रोग की चिकित्सा लाभदायक सिद्ध हुई है। सोडियम ऐन्टिमोनिल ग्लूकोनेट, निऑटिबोसन और यूरिया स्टिबैमाइन इस रोग की प्रभावकारी औषधियां है।

लीशमैनिया ट्रोपिका त्वचा लीशमैनिएसिस को उत्पन्न करता है। इसका संक्रमण त्वचा की अंतःस्तरी कोशिकाओं में ही सीमित रहता है जहां ये पिंडक तुल्य फोड़े बना देता है। यह रोग अपेक्षाकृत गर्म देशों में विशेषकर दक्षिण पश्चिम एशिया, पूर्वी भूमध्यसागरीय देशों और कटिबंधीय अमेरिका में स्थानीय रूप से होता है। नियमित रूप से फोड़ों की सफाई और मरहम पट्टी तथा उनके चारों ओर ऐटेब्राइन सल्फेट के इंजेक्शन इसकी चिकित्सा के लिए प्रयोग किए जाते हैं। ली. ब्रैसिलिएन्सिस द्वारा एस्पंडिया नामक रोग उत्पन्न होता है। जिसमें शरीर के अधिकतर भागों पर बहुत से फोड़े बन जाते हैं। इस रोग में नासा–गुहिकाओं, मुख और ग्रसनी में फफोले बनना अति सामान्य होता है। इस रोग के निदान के लिए ऐन्टिमनी औषधियों का इंजेक्शन लाभदायक सिद्ध हुआ है।

लीशमैनिआ की जातियों का एक मनुष्य से दूसरे मुनष्य में पारगमन फ्लीबोटोमस जाति की सिकता, मक्षियों (सैन्ड फ्लाइ) के काटने से होता है।

ट्राइकोमोनियसता (ट्राइकोमोनिएसिस)

यह रोग ट्राइकोमोनास की जातियों द्वारा उत्पन्न होता है, जो कशाभी प्रोटोजोआ होते है। इसका शरीर गोलीय होता है, जिसमें एक केंद्रक, एक अक्षदंड, एक पराधारी काय और 4 से 6 कशाभ होते हैं तथा एक कशाभ पीछे की ओर उपस्थित होता है। ट्राइकामोनास की

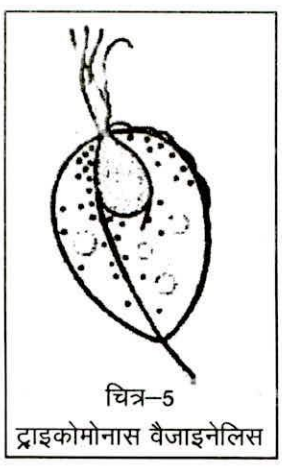
चित्र–5
ट्राइकोमोनास वैजाइनेलिस

सबसे सामान्य जाति ट्राइकोमोनास–वैजाइनैलिस (चित्र–5) है जो महिलाओं की योनि में पाई जाती है और योनिशोथ उत्पन्न करती है। इस रोग में महिलाओं की योनि में जलन और खुजली अनुभव होती है और झाग्दार योनि स्राव का विसर्जन होता है। इसका पारगमन सदैव पुरुषों द्वारा यौन क्रिया से होता है तथा पुरुष मध्यस्थ परिपोषी का कार्य करते हैं। यहां तक कि पुरुष मूत्र मार्ग और प्रोस्टेट में भी इसका संक्रमण सामान्यतया होता है। इस रोग को ठीक करने के लिए आर्सेनिक एवं आयोडिन की औषधियां तथा प्रतिजैविक औषधियां जैसे औरिओमाइसिन एवं टेरामाइसिन का प्रयोग सहायक सिद्ध हुआ है।

मलेरिया

प्लाज्मोडियम की जातियों द्वारा मलेरिया रोग उत्पन्न होता है जो स्पोरोजोआन परजीवी है। ये मादा ऐनाफेलीज मच्छर के काटने से पारगमन करते हैं। यह परजीवी मनुष्य की यकृत कोशिकाओं एवं लाल रुधिर कणिकाओं पर आक्रमण करता है। परजीवी द्वारा मुक्त किए गए एक विषाक्त पदार्थ, हीमोजोइन द्वारा मलेरिया रोग उत्पन्न होता है।

मनुष्य के लिए मलेरिया सबसे अधिक विनाशकारी रोग है। यह शीतोष्ण कटिबंधीय भागों में दूर–दूर तक फैला है। ज्वर का नियमित समय पर दोहराया जाना इसकी विशेषता है। प्ला. वाइवैक्स (चित्र–6) द्वारा उत्पन्न तृतीयक मलेरिया प्रति तीसरे दिन के पश्चात्, प्ला. ओवेल द्वारा उत्पन्न ओवेल मलेरिया प्रति तीसरे दिन के पश्चात्, प्ला. मलेरियाई द्वारा उत्पन्न चतुर्थक मलेरिया प्रति चौथे दिन के पश्चात् दोहराया जाता है। मलेरिया

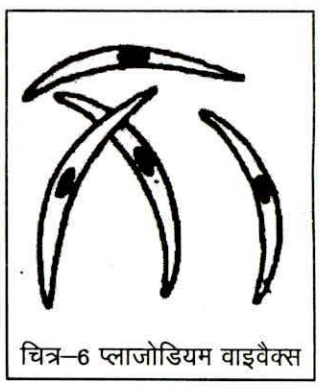
चित्र–6 प्लाजोडियम वाइवैक्स

3563 HRD/15—4B

की चिकित्सा करने के लिए जिन विविध प्रकार की औषधियों का उपयोग किया जा सकता है। कुनैन, ऐटेब्रिन, क्लोरोक्वीन, वैमाक्वीन पैल्युड्रिन, डैराप्रिम इत्यादि है।

टॉक्सोप्लाज्मता (टॉक्सोप्लाजामेसिस)

यह रोग टॉक्सोप्लाज्मा गोंडियाई (चित्र–7) द्वारा उत्पन्न होता है जो एक स्पोरोजोअन होता है। यह समस्त विश्व में दूर–दूर तक फैला है। यह परजीवी गर्भाशय के जालिका अंतःस्तरीय (रेटिकुला–एन्जेथीलियम) और केंद्रीय तंत्रिकातंत्र की कोशिकाओं में रहता है। इन परजीवियों की संख्या एन्डोडाओजेनी द्वारा बढ़ती है, परंतु कुछ विशेष परिस्थितियों में बड़ी–बड़ी पुटियां भी उत्पन्न होती है। साधारणतया यह परजीवी अपने पोषक में बिना किसी लक्षण को प्रकट किए रहता है, परंतु यदि इससे मादा संक्रमित हो जाती है तो गर्भ में विकसित हो रहे शिशु के तंत्रिका तंत्र पर उसका प्रभाव पड़ता है और जन्म के बाद शिशु की मृत्यु हो जाती है। सल्फाडाइजीन के साथ डैराप्रिम का मिश्रण इस रोग का प्रभावशाली उपचार है।

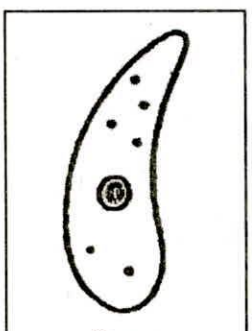

चित्र–7
टॉक्सोप्लाज्मा गोंडियाई

बैलेंटीडियमी अतिसार या पेचिश

यह रोग बैलेटीडियम कोलाई (चित्र–8) द्वारा उत्पन्न होता है, जो एक आंत्रीय परजीवी प्राणी है। इस रोग में प्रवाहिका के साथ–साथ बडी आंत में अतिसार (पेचिश) भी होता है। इससे बड़ी आंत में व्रण (अल्सर) बन जाते हैं। संदूषित भोजन और जल में उपस्थित इसकी पुटियों द्वारा परजीवी का नए परपोषी में पारगमन होता है। इस रोग की चिकित्सा के लिए कार्बोसोन, औरिओमाइसिन तथा टेरामाइसिन जैसी आदर्श औषधियां है।

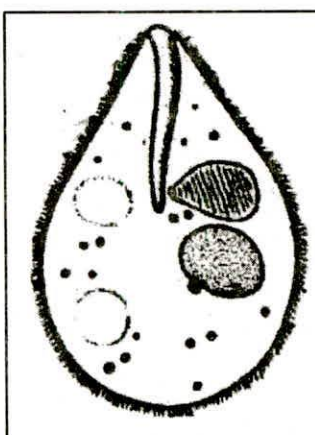

चित्र–8 बैलेन्टीडियम कोलाई

○○○

5

प्लेग

डॉ. सी. पी. सिंह

प्लेग एक ऐसी बीमारी है जिससे पूरा गांव, नगर, राज्य या देश चपेट में आ सकता है, एवं मौत का तांडव बन सकता है। यही कारण है कि यह बीमारी महामारी का रूप धारण कर लेती है। सन् 1995 में सूरत (गुजरात) एवं महाराष्ट्र के कुछ नगरों में फैले प्लेग ने पूरे देश को हिला दिया था और उस समय इस महामारी से बहुत लोगों की मौत हो गई थी।

वैज्ञानिक परीक्षणों से स्पष्ट है कि चूहों के शरीर पर पलने वाले पिस्सू "जीनोप्सिका चियोप्सिम" (Zenopsica chiopsim) ही प्लेग के जीवाणुओं को मनुष्य तक पहुंचाने के लिए उत्तरदायी है।

प्लेग के कारण

प्लेग का जीवाणु वैसिलस पेस्टिस (Bacillus pestis) जो पिस्सुओं में मुख्यतः पाया जाता है। जब पिस्सू चूहों के रक्त का पान करते हैं तो चूहों के रक्त में यह जीवाणु पिस्सुओं द्वारा पहुंच जाते हैं। फलतः चूहे प्लेग से ग्रसित हो जाते हैं जिससे उनकी ग्रंथियां फूलनें लगती है। यहां तक कि चूहों की मृत्यु तक हो जाती है। इन प्लेग ग्रस्त चूहों एवं रक्तपान करने वाले पिस्सुओं से यह प्लेग मानव शरीर मे फैल जाता है। इस प्रकार पिस्सू इस रोग का प्राथमिक एवं चूहे द्वितीय निर्णायक वाहक हैं।

प्लेग का संक्रमण नालियों में रहने वाले चूहों से अधिक होता है। जब घर में रहने वाले चूहों का संपर्क नालियों में रहने वाले चूहों से होता है तो घर में रहने वाले चूहे भी संक्रमति हो जाते हैं और प्लेग का कारण बनते हैं। वैज्ञानिक शोधों से पता चला है कि चूहों के रक्त में 10 करोड़ प्लेग के जीवाणु रह सकते हैं। चूहों को जब प्लेग की बीमारी लगती हैं तो वे मरने लगते हैं और तब इन चूहों से निकलने वाले पिस्सू मानवों पर हमला करते हैं। यदि चूहों पर प्रभावी नियंत्रण न रखा जाए तो यह बीमारी पुनः फैल जातीं है।

प्लेग के प्रकार एवं लक्षण

लक्षणों के आधार पर प्लेग को निम्न वर्गों में विभक्त किया गया हैः–

1. न्यूमोनिक प्लेग (Pneumonic Plague) – यह संक्रामक प्लेग है, इसमें फैफे फेफडे प्रभावित हो जाते हैं। तेज बुखार के साथ–साथ हल्की खांसी, खूनी बलगम एवं दस्त होने लगते हैं।

2. ब्यूबोनिक प्लेग (Bubonic Plague) – इस रोग में शरीर के लसीका ग्रंथियों में सूजन एवं दर्द हो जाता है।

3. आत्र प्लेग (Intestinal Plague) – इसमें रोगी में मानसिक एवं शारीरिक अवसाद के लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

4. पूतिजीवरक्ती प्लेग (Septicemic Plague) – इसमें जीवाणु मनुष्य की रक्त कोशिकाओं में प्रवेश कर जाते हैं। जिसके फलस्वरूप रोगी को बेचैनी, घबराहट एवं सांस लेने में तकलीफ होने लगती है। इस रोग को रक्त विषाक्तता रोग भी कहते हैं।

प्लेग के उपचार

प्लेग का प्रभाव हो जाने पर इसकी रोकथाम हेतु एलोपैथिक, होम्योपैथिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में कारगार इलाज उपलब्ध हैं। प्लेग की रोकथाम हेतु "प्लेगरोधी" टीके भी लगाए जाते हैं। यह टीका महामारी से कम–से–कम एक सप्ताह पूर्व लगाया जाता है।

प्लेग से बचने एवं सावधानियों के अतिरिक्त इस रोग की रोकथाम हेतु जनजागरूकता की आवश्यकता है। इसमें सर्वप्रथम साफ–सुथरा वातावरण बनाए रखना महत्वपूर्ण है। प्लेग फैलने की स्थिति में पिस्सुओं के सफाए एवं नियंत्रण की तत्काल व्यवस्था करनी चाहिए। प्लेग फैलने की अफवाहों को जन्म न देकर इसे रोकने के उपायों को अपनाकर ही इस महामारी से छुटकारा मिल सकता है।

प्लेग की रोकथाम

सीडीसी प्लेग सहित कुतरकर खाने वाले पशुओं (rodents) और उनके वैक्टर के कारण पशुजन्य–रोग रोगों से संबंधित निम्नलिखित निवारक सिफारिशें प्रदान करता है–

- प्लेग होने के लिए जाना जाता है जहां कृंतक आबादी में प्लेग की गतिविधि के लिए देखो, तुरंत स्थानीय स्वास्थ्य विभाग या कानून प्रवर्तन अधिकारियों को बीमार या मृत पशुओं के किसी भी टिप्पणियों की सूचना देना चाहिए।
- घरों, कार्य–स्थलों और मनोरंजन के क्षेत्रों के आसपास कृंतकों के लिए भोजन या घोंसले के शिकार स्थानों के स्रोतों को खत्म करने, ब्रश, रॉक बवासीर, कबाड़, बरबाद जलाऊ लकड़ी और इस तरह के पालतू और जंगली जानवर भोजन के रूप में संभावित खाद्य आपूर्ति हटा देना चाहिए। अपने घर को कृंतक प्रूफ बनाकर रखें।
- पिस्सू के काटने से बचने के लिए अधिकारियों के निर्देशों के अनुसार कपड़े और त्वचा के लिए कीट लागू होते हैं। संभावित संक्रमित पशुओं से निपटने के लिए दस्ताने का उपयोग करें।
- नियमित रूप से पिस्सू नियंत्रण के लिए चूहों, पालतू कुत्तों और बिल्लियों को स्वतंत्र रूप से घूमने की अनुमति अपने क्षेत्रों में नहीं देनी चाहिए।
- प्लेग फैलने के दौरान चयनित स्थलों पर पिस्सू को मारने के लिए स्वास्थ्य अधिकारी उचित रसायनों का उपयोग कर सकते हैं।

○○○

6

विज्ञान समाचार

डॉ. दीपक कोहली

- **तैरने वाला सौर ऊर्जा संयंत्र**

ऊर्जा जरूरतें पूरी करने के लिए पूरी दुनिया में नए–नए विकल्पों की तलाश हो रही है। फ्लोटिंग सोलर पावर प्लांट, यानी पानी पर तैरने वाला सौर ऊर्जा संयंत्र, इन्हीं विकल्पों में से एक है। जापान ने हाल ही में दस फ्लोटिंग सोलर पावर प्लांट लगाने की घोषणा की है। हमारे देश में भी टाटा पावर नाम की कंपनी आस्ट्रेलियाई कंपनी सनेंजी की मदद से इसे विकसित कर रही है।

तैरने वाले सौर ऊर्जा संयंत्र की परिकल्पना वास्तव में सनेंजी के कार्यकारी निदेशक एवं मुख्य तकनीकी अधिकारी 'फिल कोन्नर' की खोज द्रव सौर सारणी (लिक्विड सोलर ऐरे–एलएसए) के कारण संभव हुई है। इसमें हल्के प्लास्टिक के लेंसो का प्रयोग किया जाता है, जो डंडों के सहारे पानी पर तैरता रहता है और सूर्यमुखी फूल की तरह सूरज का पीछा करते हुए उसकी रोशनी को सौर बैटरियों पर एकत्रित करता है। इस लेन्स का नियंत्रण कंप्यूटर के जरिए किया जाता है जिससे यह पूरी क्षमता के साथ सूर्य की रोशनी एकत्र कर पाता है। पानी पर तैरने के कारण तेज हवा से बचाने के लिए एलएसए को सहारा देने वाले ढांचे की जरूरत कम पड़ती है। खराब मौसम में लेन्स पानी में डूब जाता है और पानी बैटरियों को ठंडा कर देता है। इस तरह पानी इसके कूलर एवं रक्षक, दोनों का काम करता है। इससे इसकी उम्र भी बढ़ जाती है। इस तकनीकी की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें न तो बहुत ज्यादा सामग्रियों की जरूरत पड़ती है और न ही अतिरिक्त भूमि अधिग्रहण की। जमीन पर लगाए जाने वाले सौर ऊर्जा संयंत्रों की तुलना में यह सस्ता और टिकाऊ भी हो सकता है। इसके अलावा वैज्ञानिकों का दावा है कि यह पहले से उपयोग हो रहे औद्योगिक जलाशयों पर भी लगाया जा सकता है।

- **कृत्रिम मानव मस्तिष्क बनाने में मिली सफलता**

वैज्ञानिकों ने मानवीय मस्तिष्क के कामकाज का अब तक का सबसे निकटतम मॉडल तैयार करने में सफलता हासिल की है। यह कृत्रिम मस्तिष्क आईक्यू परीक्षा को भी पास करने में सक्षम है। कनाडा के वैज्ञानिकों के इस शोध को 'साइंस जर्नल' के ताजा अंक में प्रकाशित किया गया है।

ब्रिटेन के समाचार पत्र 'डेली मेल' की खबर के अनुसार यह कृत्रिम मस्तिष्क सुपरकंप्यूटर पर चलता है। इसमें एक डिजिटल आंख है जिसकी मदद से वह इनपुट ग्रहण करता है इसके साथ ही उसमें एक रोबोटिक हाथ भी लगा हुआ है जिसका इस्तेमाल वह अपनी प्रतिक्रिया के लिए करता है। कनाडा की 'यूनिवर्सिटी ऑफ वाटरलू' के न्यूरो वैज्ञानिकों और सॉफ्टवेयर इंजीनियरों का दावा है कि यह दुनिया में अब तक तैयार मानव मस्तिष्क का सबसे जटिल मॉडल है। इस कृत्रिम मस्तिष्क को स्पाउन (सेमेंटिन प्वाइंटर आर्किटेक्चर यूनीफाइड नेटवर्क) नाम दिया गया है। इसमें लगभग 25 लाख सिमुलेटेड न्यरॉन्स लगे हुए हैं जिससे यह एक साथ आठ अलग–अलग कामों को अंजाम दे सकता है। इन कामों में चित्र बनाना, गिनती

गिनने से लेकर किसी सवाल का जवाब देना या तर्क शक्ति परीक्षण के हल ढूंढने आदि तक के काम शामिल है। परीक्षण के दौरान वैज्ञानिकों ने अंक और अक्षर इस कृत्रिम मस्तिष्क के सामने फ्लैश किए। स्पाउन ने तुरंत ही उन्हें पढ़ लिया और अपनी मेमोरी में उनका प्रक्रमण (प्रोसेसिंग) शुरू कर दिया।

- **कैसे भर रही है ओज़ोन परत**

निसंदेह एक खुशखबरी है और इस खबर से साबित होता है कि यदि दुनिया भर के लोग पर्यावरण के प्रति सचेत हो जाएं तो हम अपने पर्यावरण की रक्षा करने में सक्षम हैं। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार ओजोन गैस की परत का नाश होने का क्रम बंद हो गया है और एक अनुमान के अनुसार 2048 तक ओज़ोन का स्तर अपनी पूर्ववत स्थिति में आ जाएगा। सन् 1980 के बाद से ओज़ोन गैस की परत को नुकसान पहुंचने की दर खतरनाक ढंग से बढ़ गई थी और इसके लिए जिम्मेदार थे 100 से अधिक ऐसे पदार्थ और गैसें जो विभिन्न गैजटों और उपकरणों में प्रयुक्त हो रहे थे। सबसे अधिक हानि रेफ्रिजरेटर और वातानुकूलित संसाधनों में प्रयुक्त होने वाली गैसें पहुंचा रही थी। परंतु बाद में एक आम सहमति बनी कि इस तरह की गैसों पर निर्भरता कम कर दी जाएगी और अब उसका असर दिखाई देने लगा है।

अब न केवल ओज़ोन गैस की परत को नुकसान पहुंचने का क्रम बंद हो गया है बल्कि दुनिया भर में स्किन कैंसर की दर में भी भारी कमी आने की संभावना दिखाई दे रही है। यही नहीं वैज्ञानिक मानते हैं कि सन् 2048 तक ओज़ोन गैस की परत 1980 के स्तर तक पहुंच जाएगी। ओज़ोन गैस की परत को पहुंच रहे भारी नुकसान को देखते हुए मोंट्रीयल प्रोटोकाल को मंजूरी दी गई थी जिसके तहत दुनिया भर की कंपनियां हानिकारक गैसों पर निर्भरता कम करने को राजी हुई थी और अब उसका असर दिखाई दे रहा है। कहते हैं न, जहां चाह वहां रहा।

- **क्यों हिल रही है धरती**

स्पेन के शहर लॉर्का में गत वर्ष आए भूकंप का गहन अध्ययन करने के पश्चात् वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि इसके पीछे भू–जल के अत्याधिक दोहन का हाथ है। इस अध्ययन के लिए वैज्ञानिकों ने सेटेलाइट का सहारा लिया जिससे ली गई तस्वीरों से यह जानने में मदद मिली कि जमीन के किस हिस्से में हलचल हुई थी और इसकी वजह से कौन–सा हिस्सा अपनी जगह से विस्थापित हो गया।

इस अध्ययन ने यह पूरी तरह से स्थापित कर दिया है कि किस तरह से बोरिंग के द्वारा वर्षों तक जमीन से पानी निकालने से भूकंप आने का खतरा बढ़ सकता है। स्पेन के शहर लॉर्का में आए भूकंप में जमीन के केवल तीन किलोमीटर नीचे जमीन का हिस्सा अपनी जगह से विस्थापित हुआ था। इस बारे में वैज्ञानिकों का यह भी कहना था कि मात्र 5.1 तीव्रता के भूकंप के बावजूद इतना अधिक नुकसान हुआ था। गहराई से अध्ययन करने पर वैज्ञानिकों ने यह जाना कि भूकंप प्रभावित इलाके के निकट ओल्टो ग्वाडेलेंटिन बेसिन के नीचे भूजल स्तर में पिछले 50 वर्षों के दौरान 250 मीटर की गिरावट दर्ज की गई है। किसान सिंचाई के लिए भूजल का बेताहाशा दोहन कर रहे हैं। इस बारे में कुछ वैज्ञानिकों को कहना है कि इस तरह के अध्ययनों से भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाओं पर काबू पाने में सफलता मिल सकती है।

- **रोबोट ने किया दिल का ऑपरेशन**

ब्रिटेन में एक महिला के दिल का ऑपरेशन किसी डॉक्टर ने नहीं बल्कि एक रोबोट ने किया है। इस तरह से स्वीडन व फिनलैंड के बाद ब्रिटेन तीसरा यूरोपीय देश बन गया है जहां दिल के ऑपरेशन के लिए रोबोट का प्रयोग किया गया है। लंदन के वॉल्वरहैंप्टन में 'न्यू क्रॉस हॉस्पिटल' में इस ऑपरेशन के लिए 'द विंची रोबोट' का प्रयोग किया गया। डॉक्टरों ने दूर बैठकर कैमरे की मदद से इस रोबोट को संचालित किया।

जिस महिला का ऑपरेशन किया गया उसके दिल में छेद था। डॉक्टरों का मानना है कि पारंपरिक ऑपरेशन की तुलना में रोबोट से किया गया ऑपरेशन ज्यादा सुरक्षित है। गौरतलब है कि सामान्य ऑपरेशन में शरीर में बड़ा चीरा लगाना पड़ता है जबकि रोबोट से किए जाने वाले ऑपरेशन में पसलियों के पास मात्र एक छोटा–सा चीरा लगाना होता है। यहीं से रोबोटिक आर्म ऑपरेशन के लिए प्रवेश करता हैं।

- **सभी प्रकार के कैंसर के लिए एक परीक्षण**

कैंसर का परीक्षण आज भी काफी खर्चीला और दुरुह माना जाता है, लेकिन अब वैज्ञानिक दावा कर रहे हैं कि वह दिन दूर नहीं जब इसका पता शुरुआती दौर में ही लगा लिया जाएगा। ब्रिटेन के ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने इस बारे में जानकारी दी है।

यहां के वैज्ञानिकों ने एक चूहे में स्तन–कैंसर का पता उसी वक्त लगा लिया था जब कैंसर के दौरान होने वाली सूजन की शुरुआत भी नहीं हुई थी। वैज्ञानिकों का दावा है कि सिर्फ एक रसायन को कैंसर कोशिका के अंदर डालकर किसी भी तरह के कैंसर का पता आरंभिक अवस्था में ही लगाया जा सकता है।

एक शोध के दौरान 'ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी' के वैज्ञानिक उस प्रोटीन की तलाश कर रहे थे जिसे गामा–एचटूएएक्स कहा जाता है। ये प्रोटीन शरीर में डीएनए के क्षतिग्रस्त हो जाने पर निकलती है और यही कैंसर की प्रारंभिक अवस्था होती है। वैज्ञानिकों ने इसके लिए एंटीबॉडी का इस्तेमाल किया जो गामा एचटूएएक्स का सबसे बड़ा सहयोगी माना जाता है और इसे शरीर से पूरी तरह से समाप्त कर देता है।

अब वैज्ञानिकों का कहना है कि एंटीबॉडी के साथ कुछ रेडियोसक्रिय तत्वों का इस्तेमाल करके इससे किसी भी तरह के कैंसर का परीक्षण आसानी से किया जा सकता है। इस शोध से आने वाले वक्त में कैंसर के इलाज के आसान होने की उम्मीद है।

- **आसमान में बागवानी**

जमीन पर हरियाली कम हो रही है तो क्या हुआ आसमान तो है न! कभी सोचा है आपने आसमान में बगीचा लगाया जाए तो कैसा हो? कैलीफोर्निया के 'स्टीफन ग्लासमैन' ने न सिर्फ ऐसा सोचा बल्कि इस सोच को पूरी करने के लिए भी जुट गए। स्टीफन का प्रोजेक्ट 'अर्बन एयर' कैलीफोर्निया के लास एंजिल्स में चर्चा का विषय बना हुआ है। इस परियोजना का नाम है – 'गार्डन इन द स्काई'। सड़कों पर पसरे ट्रैफिक के बीच हरियाली को जगह देने के लिए स्टीफन ने आसमान को चुना है। इस परियोजना के लिए स्टीफन ने बांस को चुना। बांस की सबसे बड़ी विशेषता इसकी मजूबती है। स्टीफन ग्लासमैन को उम्मीद है कि उनका 'गार्डन इन द स्काई' वाहन चालकों को भी शांति और सुकून का अहसास देगा। साथ ही हरियाली बनाए रखने के लिए देश में ऐसी दूसरी परियोजना शुरू करने की प्रेरणा भी मिलेगी।

ग्लासमैन कहते हैं कि, "मैं शहरों के आसमान को इतना खूबसूरत बनाना चाहता हूं कि जब भी ट्रैफिक में फंसे थके–हारे लोग ऊपर की तरफ देखें तो उन्हें ताजी हवा और सुकून का अहसास हों।" फिलहाल इस परियोजना का खाका तैयार कर लिया गया हैं। मिस्टर ग्लासमैन के अनुसार सारी तैयारी पूरी हो गई है। डिजाइनिंग से लेकर इंजीनियरिंग तक सब कुछ तय हो चुका है। परियोजना के लिए एक विज्ञापन बोर्ड भी दे दिया गया है। बस मंजिल से कुछ कदमों की दूरी बाकी है।

- **जापान बनाएगा प्रदूषण मुक्त शहर**

इलेक्ट्रॉनिक और तकनीक के क्षेत्र में अग्रणी जापान का इरादा अब ऐसे शहर बनाने की ओर है जहां कार्बन उत्सर्जन शून्य के करीब होगा। जापान न केवल ऐसे शहर बनाएगा बलिक अन्य देशों को बेचेगा भी।

जापान ने इस तरह के स्मार्ट शहर की परियोजना प्रस्तुत की। जापान के 'कम्बाइंड एक्सीबिशन ऑफ

एडवांस टेक्नोलोजीज' यानी सीटेक प्रदर्शनी में एक बड़े क्षेत्र में स्मार्ट सिटी का खाका प्रस्तुत किया गया। इसमें यह दिखाया गया कि वर्ष 2020 तक शहरी जीवन किस तरह का हो जाएगा। जापान की इस परियोजना में कार्बन उत्सर्जन को कम–से–कम रखने पर जोर दिया गया है।

इस तरह के स्मार्ट शहर में सौर, पवन और परमाणु ऊर्जा का अधिकाधिक इस्तेमाल किया जाएगा। इन स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा को शहर के घरों, रास्तों और वाहनों में वितरित किया जाएगा। ज़ाहिर है इस शहर में चलने वाले सभी वाहन जीवाश्म ईंधन के बिना चलेंगे, सारे वाहन, घर और अन्य संसाधन स्मार्ट ग्रिड से जुड़े होंगे जो उन्हें ऊर्जामय रखेंगे। जापान ने टोक्यो के पास पांच वर्ष के "योकोहमा स्मार्ट सिटी प्रोजेक्ट" शुरू भी कर दिया है। यह एक छोटा शहर होगा जो बिल्कुल प्रदूषण मुक्त होगा।

आस्ट्रेलिया ने भी न्यू साउथ वैल्स के शहर न्यूकैसल को स्मार्ट ग्रिड से जोड़ने का काम शुरू किया है। इस पर शुरूआती तौर पर 100 मिलियन डॉलर खर्च किए जा रहे हैं। दक्षिण कोरिया भी ऐसी ही एक परियोजना जेजु द्वीप पर शुरू कर रहा है जिसकी लागत 200 मिलियन डॉलर तय की गई है। चीन इस तरह की परियोजना के पीछे 7.3 बिलियन डॉलर खर्च कर रहा है। मध्यपूर्व में आबूधाबी के पास ऐसा ही एक स्मार्ट शहर बन रहा है। भारत में गुजरात की राजधानी के पास "गिफ्ट सिटी" भी कुछ इसी तरह की परियोजना है। इसके अलावा निजी कंपनियां भी इस तरह को पहल कर रही हैं। टोयोटो, जापान में टोयोटा स्मार्ट सेंटर बना रहा है। इसमें तरह–तरह के विकल्पों का इस्तेमाल कर ऊर्जा तेयार की जाएगी। जैसे कि चलने से, गाड़ियों के चलने से, कचरे से, खराब पानी से आदि। यहां के निवासी जब अपने गैजटों का इस्तेमाल नहीं कर रहे होंगे तो वे स्वतः स्विच ऑफ हो जाएंगे ताकि ऊर्जा की बचत हो।

○○○

3563 HRD/15—5A

7

पादप हार्मोनों की ट्यूबराईजेशन के विकास में उपयोगिता

डॉ. आर. एस. सेंगर

ट्यबराईजेशन वाली फसलों में आलू की फसल एक महत्वपूर्ण फसल मानी जाती है। भारत में आलू की खेती लगभग 15 लाख हेक्टर क्षेत्र में होती है। इसमें पहाड़ी क्षेत्रों का योगदान लगभग 10 प्रतिशत है खाद्य पदार्थ के साथ में आलू की मांग लगातार बढ़ती जा रही है। इसलिए वैज्ञानिकों के सामने आलू का अधिक से अधिक उत्पादन लेना एक चुनौती है।

आलू की खेती शुरू में पेरू तथा वोलिविया सीमा के पास लेक टिटिकाका के समीप एड़ीज में की गई। इतिहास गवाह है कि सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में जब स्पेनवासियों के विजय अभियान के दौरान वोलिविया चिल्ली कोलोम्बिया, एक्वाडोर तथा पेरू जहां आलू की सैकड़ों प्रजातियां उगाई जाती थी वहां से स्पेनवासी पूरे यूरोप में पहले वनस्पति जिज्ञासा को शांत करने तथा बाद में खाद्य फसल के रूप में आलू उगाने लगे। इंग्लैंड में आलू का आगमन सर वाल्टर टेलिंग तथा सर फ्रांसिस डैक जैसी हस्तियों द्वारा हुआ। वर्ष 1590 ई. के दौरान अंग्रेज नाविकों द्वारा स्पेन के समुद्री जहाज को पकड़ने से उसमें प्राप्त आलूओं से इंग्लैंड में आलू का आगमन अधिक उपयुक्त माना जाता है। भारत में सन् 1600 ई. में आलू का आगमन पुर्तगाल व्यापारियों द्वारा उत्तरी बंबई बंदरगाह पर हुआ। सन् 1700 ई. से पूर्व तक पश्चिमी भारत के कुछ हिस्सों में आलू को किचन गार्डन फसल के रूप में उगाया जाता रहा। जबकि दक्षिण भारत में आलू 1880 ई. में आया। पहले–पहल अंग्रेजों ने उत्तर के पहाड़ी इलाकों में आलू की खेती को बढ़ावा देने के उद्देश्य से कार्य किया तत्पश्चात् इसे मैदानी इलाकों में उगाया गया। सन् 1890 ई. में समूचे भारत के नगरों में इसे छोटे–छोटे भू–खंड़ों में उगाया जाने लगा। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध (1990–1949) भारत में आलू के विकास का परिवर्ती समय माना जाता है। 1 अप्रैल 1935 को इम्पीरियल (अब भारतीय) कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने हिमाचल के पहाड़ी क्षेत्रों में शिमला तथा कुफरी तथा कुमाऊ की पहाड़ियों के भुवाली क्षेत्र में तीन बीज उत्पादन केंद्र खोले। इसके अलावा एक केंद्र मेरठ तथा ग्वालियर में स्थित है। इन केंद्रों को खोलने का मुख्य उद्देश्य रोगमुक्त आलू का अधिक से अधिक उत्पादन करना है। आलू के उत्पादन को बढ़ाने में पादप हार्मोन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ट्यूबर वाली विभिन्न फसलों में पादप हार्मोन की उपयोगिता की यहां पर विस्तार से चर्चा की जा रही है।

आलू के पौधे में ट्यूबराईजेशन का आरंभ और वृद्धि पौधे के ऊपरी और भूमिगत भाग में जैव रासायनिक परिवर्तनों के फलस्वरूप होता है। पोषण सिद्धांत के अनुसार कार्बन और नाइट्रोजन के अनुपात में परिवर्तन के फलस्वरूप यह प्रक्रिया होती है। प्रकाश संश्लेषण के उत्पाद और पोषक पदार्थों के परिवर्द्धन जैसे कि कार्बन और नाइट्रोजन के अनुपात पर यह प्रक्रिया निर्भर करती है। प्रतिकूल परिस्थिति अर्थात् अधिक ताप, कम प्रकाश की तीव्रता का समावेश तने और जड़ की वृद्धि को रोकता है। यदि ट्यूबलर प्रतिकूल परिस्थितियों में उपस्थित है तो उनको इस स्थिति से संपूर्ण रूप से प्राप्त किया जा सकता है। हाल ही में वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययन में पौधा वर्द्धक पदार्थों के प्रभाव का अध्ययन ट्यूबराईजेशन में किया गया है। इसे 'हार्मोनल

3563 HRD/15—5B

सिद्धांत' कहा गया है। प्रयोगों में अनुकूल परिस्थिति में विशेष तथ्य दीप्ति काल (फोटो पीरियड़) को खोजा गया जिससे उत्पन्न पदार्थ ट्यूबराईजेशन के दौरान, भूस्तारी (स्टीलान) में अंतरित कर दिया जाती है।

ग्रेगरी (1954, 1956) का प्राचीन अधिरोपण प्रयोग ट्यूबराईजेशन के हार्मोनल सिद्धांत को बल प्रदान करता है। दीप्ति काल, ताप और अधिरोपण संगठन द्वारा प्रेषित कुछ पदार्थ (न की मुख्य चयापचयी पदार्थ, कार्बोहाइड्रेट) निश्चित परिस्थितियों में ट्यूबर बनाने वाले अपघटक होते हैं। आलू का ट्यूबर, रूपांतरित तना है जिसमें नोड और अंतर्नोड होता है।

आलू का ट्यूबलर, पौधे के भूमिगत राइजोम वाली जगह पर बनना प्रारंभ होता है इसको हम 'भूस्तारी' कहते हैं। भूस्तारी के अग्र भाग में भूमि में नीचे ट्यूबर का बनना और वृद्धि आरंभ होती है।

ट्यूबर प्रारंभन की निम्नलिखित क्रम में वृद्धि होती है–

1. भूस्तारी की लंबाई में वृद्धि का रूकना ध्रुवता वृद्धि परिवर्तन और शुरू के समय में त्रिज्य कोशिका का विभाजन होता है।

2. पहले जैव रासायनिक पदार्थ स्टार्च का एकत्रीकरण और ट्यूबर में ग्लाईको प्रोटीन पेटैटिन का समायोजन होता है।

3. ट्यूबर से वृद्धि और विकास के लिए कोशिका विभाजन और आकार में वृद्धि, ट्यूबर के परिपक्व होने तक होती है। जब ट्यूबर परिपक्व हो जाता है तब कोशिका विभाजन तेजी से घटने लगता है।

संपूर्ण पौधे में ट्यूबर भूमिगत होता है तो भी पत्ती/कली में भूमि से ऊपर ट्यूबर की उत्पत्ति को अक्षीय कलियों के रूप में देखा गया है। यह ट्यूबर भूस्तारी से न विकसित होकर अक्षीय कलियों से वृद्धि करता हैं। ये ट्यूबर छोटे और क्लोरोफिलयुक्त होते हैं। ट्यूबर के विकास के लिए कली के कटे हुए भाग को भूमि में दबा देने पर ट्यूबर बन जाता है। ट्यूबराईजेशन एक जटिल प्राकृतिक घटना है जो पोषी वातावरण, मातृ ट्यूबर, अनुवंशिकी, पत्ती का क्षेत्रफल इत्यादि से प्रभावित होती है। इन विभिन्न परिस्थितियों में उबरने के लिए वैज्ञानिकों ने पात्रे (इनविट्रो) पद्धति का अनुसरण किया है जिसमें वृद्धि के लिए शर्तों का नियंत्रण किया जाता है।

पौधा वर्द्धक पदार्थों द्वारा ट्यूबराईजेशन पर नियंत्रण

हार्मोनल सिद्धांत के अनुसार ट्यूबराईजेशन को मुख्य रूप से वातावरण और पौधा वर्द्धक पदार्थ प्रभावित करते हैं। वातावरण में दीप्ति काल और ताप, ट्यूबर आरंभन में मुख्य भूमिका निभाते हैं। कुछ प्रमुख पादप हार्मोन1का विवरण यहां पर दिया जा रहा है।

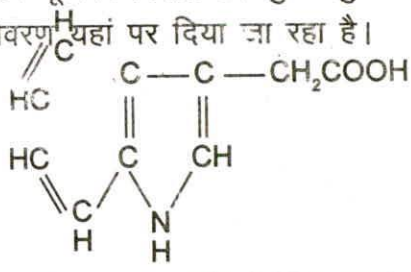

ऑक्सिन (β – इन्डोल ऐसीटिक अम्ल)

2.

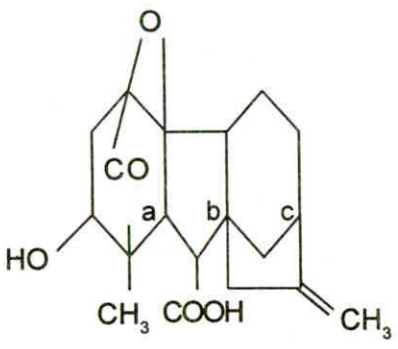

$A_1(C_{15}H_{24}O_6)$ (जिब्रेलिन)

3.

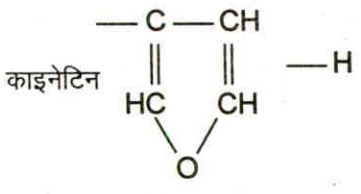

(फरफ्यूरिल)

4.

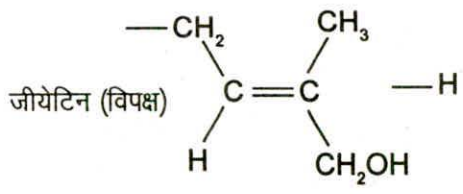

(साइटोकाइनिन)

पौधा वर्द्धक पदार्थ अंतर्जात स्तर

जिब्रेलिन – आलू के ट्यूबर में जिब्रेलिन पाया जाता है। जिब्रेलिन की मात्रा पौधे के अलग–अलग भाग में अलग–अलग होती है। जिब्रेलिन की सक्रियता, पौधे के ट्यूबर की तेज वृद्धि के समय में अपनी चरम सीमा पर होती है और परिपक्व, सुसुप्त ट्यूबर में जिब्रेलिन की सक्रियता बहुत ही कम होती है। पौधे में नाइट्रोजन का अधिक स्तर वानस्पतिक वृद्धि को प्रोत्साहित करता है और प्ररोह में जिब्रेलिन की अधिकता ट्यूबराईजेशन को रोकती है जबकि नाइट्रोजन स्तर में कमी ट्यूबराईजेशन को प्रोत्साहित करती है। वैज्ञानिक अध्ययन में यह पाया गया है कि जिब्रेलिन के लंबे होने को बढ़ावा देती है और ट्यूबराईजेशन प्रक्रिया का अवरोध करती है।

साइटोकाइनिन – वैज्ञानिक अध्ययनों में यह पाया गया है कि साइटोकाइनिन का बढ़ा हुआ स्तर ट्यूबराईजेशन को बढ़ावा देता है। आलू के पौधे की पत्ती में मुख्य रूप से पाया जाने वाला साइटोकाइनिन, जिएटिन राइबोसाइड है। जिएटिन आलू के ट्यूबर, पत्ती और जड़ में भी पाया जाता है। अभी तक साइटोकाइनिन की ट्यूबराईजेशन प्रक्रम में भूमिका स्पष्ट नहीं है क्योंकि ट्यूबराईजेशन के दौरान अंतर्जात स्तर में परिवर्तन सीमित होते हैं।

अवरोधक – शोध अध्ययनों में यह पाया गया है कि एब्सिसिक अम्ल ट्यूबराईजेशन में अंतर्जात अवरोधक का कार्य करता है। एब्सिसिक अम्ल का समायोजन ट्यूबराईजेशन प्रक्रिया में अभी तक स्पष्ट नहीं है।

अन्य पौधा वर्द्धक पदार्थ – हेलिया के पौधे में एथिलीन के अंतर्जातीय स्तर को ध्यान में रखकर अध्ययन किया गया है। आलू के पौधे में इसका अध्ययन नहीं किया गया है। जब आलू के पौधे की जड़ को कार्बनडाईऑक्साइड की अधिकता से प्रभावित किया जाता है तो पत्ती में इन्डोल एसिटिक अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है जो ट्यूबराईजेशन को बढ़ावा देती है। आई.ए.ए. ट्यूबराईजेशन प्रक्रम में मुख्य भूमिका निभाती है। ट्यूबराईजेशन का प्रारंभिक अवस्था में पॉलिऐमीनों की मात्रा के जैव निर्माण में परिवर्तन होता है। आलू के ट्यूबराईजेशन के दौरान पॉलिऐमीन स्पर्मीडिन और स्पर्मीन कृत्रिम जैव निर्माण की बढ़ी हुई मात्रा में पाई जाती है और बाद में ट्यूबर का आकार बढ़ जाने पर सांद्रता घट जाती है। पुट्रेस्कीन की मात्रा भूस्तारी के शीर्ष भाग में लगातार घटता है और ट्यूबराईजेशन प्रक्रम जारी रहता है। इस समय फ्लोरीजैन की तरह कुछ नए ट्यूबराईजेशन पदार्थ को खोजा जा रहा है।

पौधा वर्द्धक पदार्थ का बहिर्जात अनुप्रयोग

वर्तमान के अध्ययन के अनुसार पौधा वर्द्धक पदार्थों की अंतर्जात मात्रा में परिवर्तन की ट्यूबराईजेशन में स्पष्ट भूमिका ज्ञात नहीं है।

जिब्रेलिन – बहिर्जात अनुप्रयोगों के अंतर्गत जिब्रेलिन का ट्यूबराईजेशन पर अवरोध पाया गया है। जिब्रेलिक अम्ल का पल्लव (फोलियर) अनुप्रयोग संपूर्ण पौधे में ट्यूबराईजेशन प्रक्रम में अधिक अवरोध प्रभाव होता है। जि.ए. 1, जि.ए. 3, जि.ए. 4, जि.ए. 7 अथवा जि.ए. 9 का यदि पल्लव छिड़काव करें तो इससे ट्यूबराईजेशन रुकता है। जब जिब्रेलिक अम्ल को संबर्धन माध्यम में डाल देते हैं तो यह पात्रे माध्यम में संबंधित तने पर अवरोध प्रभाव अथवा ट्यूबराईजेशन को धीमा कर भूस्तारी में वृद्धि को प्रेरित करता है। हाल के अध्ययन में यह देखा गया है कि ट्यूबराईजेशन प्रक्रम में ग्लूकोस और जिब्रेलिन का पारस्परिक संबंध होता है। वृद्धि अवरोधक 2–क्लोरोएथिल–ट्राईमेथिल अमोनियम क्लोराइड ट्यूबराईजेशन को प्रोत्साहित कर देता है। अभी तक कई दूसरे पदार्थ जीवे और पात्रे दशा में ट्यूबराईजेशन को प्रोत्साहित करते हैं। पौधा वर्द्धक अवरोध पदार्थ का प्रयोग कर अथवा जिब्रेलिन को कम कर लाभकरी वानस्पतिक वृद्धि कम हो जाती है और ट्यूबराईजेशन पर प्रभाव भी कम दिखाई देता है।

साइटोकाइनिन – साइटोकाइनिन का बहिर्जातीय अनुप्रयोग ट्यूबर आरंभन में नकारात्मक प्रभाव दर्शाता है। पात्रे अध्ययन में साइटोकाइनिन ट्यूबराईजेशन को

प्रेरित करता है। पात्रे अध्ययन में यह पाया गया है कि काइनेटिन का ट्यूबराईजेशन प्रक्रम में कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

सैलिसिलेट – सैलिसिलिक अम्ल का बहिर्जात अनुप्रयोग जीवे और पात्रे दोनों स्थितियों में आलू के पौधे में ट्यूबराईजेशन को प्रेरित करता है। यह पाया गया है कि बैन्जोइक अम्ल में उपस्थित कार्बन पर स्वतंत्र COOH समूह ट्यूबराईजेशन को प्रेरित करता है। बैन्जोइक अम्ल के साथ सैलिसिलिक अम्ल ट्यूराईजेशन की उच्चतम सक्रियता दर्शाता है। बाद के अध्ययन में यह पाया गया कि ट्यूबर उत्प्रेरित अवस्था में आलू के पौधे की पत्ती में सैलिसिलिक अम्ल नहीं पाया जाता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राकृतिक दशा में ट्यूबराईजेशन के प्रेरण में सैलिसिलिक अम्ल जिम्मेदार नहीं होता है।

अन्य पौधा वद्र्धक पदार्थ – कैचपोल और हिममान (1969) ने दावा किया कि आलू के अंकुर पर एथिलीन ट्यूबराईजेशन को प्रेरित करता है लेकिन बाद में यह देखा गया कि भूस्तारी के ट्यूबराईजेशन पर एथिलीन की भूमिका नहीं होती है अथवा बहुत ही कम होती है। ट्यूबर के आरंभन में ऑक्सिन का प्रभाव सीमित मात्रा में पाया गया है लेकिन ऑक्सिन ट्यूबर आरंभन को तेज कर सकता है। कुछ वैज्ञानिकों ने यह बताया है कि ऑक्सिन ट्यूबर आरंभन के बजाए भूस्तारी की वृद्धि में सहायक होता है।

यह देखा गया है कि जब आलू के पौधे की जड़ को 12 घंटे तक उच्च सांद्रता वाली CO_2 गैस से प्रभावित करते हैं तो दो दिन बाद पौधे में सूखे पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है। जब प्रभावित पौधे को 3 से 6 सप्ताह तक वृद्धि के लिए छोड़ देते हैं तो वहां ट्यूबराईजेशन बढ़ जाती है। CO_2 गैस से प्रभावित पौधे में भूस्तारी की लंबाई, ट्यूबर की संख्या और कुल सूखे पदार्थ के भार में वृद्धि हो जाती है। अध्ययन में यह पाया गया है कि सवंद्र्धित आलू के पौधे की जड़ को CO_2 से प्रभावित करने पर अंतर्जात पौधवद्र्धक पदार्थों (ट्रांस–जियेटिन, जियेटिन राइबोसाइड और इन्डोल एसिटिक अम्ल में परिवर्तन हो जाता है जिसके फलस्वरूप सूखे द्रव्य पदार्थ की मात्रा में ट्यूबराईजेशन अधिक हो जाता है। वैज्ञानिक अध्ययन में यह पाया गया है कि पात्रे अवस्था में संबंधित CO_2 आलू के भूस्तारी में एथिलीन अवरोधक की तरह कार्य करता है। पात्रे अध्ययन यह दर्शाता है कि ट्यूबर के निर्माण की प्रक्रिया में पॉलिऐमीनों की भी भूमिका होती है। कोमरिन से प्रेरित ट्यूबर निर्माण की कार्य विधि भिन्न है क्योंकि नाइट्रोजन का उच्च स्तर कोमरिन प्रेरित ट्यूबराईजेशन में अवरोध करता है लेकिन काइनेटिन प्रेरित ट्यूबराईजेशन में अवरोध नहीं करता है। एलर, सी.सी.सी., इथेल और इन्डोल एसिटिक अम्ल, कोमरीन प्रेरित ट्यूबराईजेशन को प्रोत्साहित करती है। पोषक विलयन में मैग्नीशियम, विटामिन–सी, मैथिली बीटा–डी, ग्लूकोप्यूरानोसिल ट्यूबरनेट, मैथिल बीटा–डी ग्लूकोयूरानोसिल हेलिएन्थिनेट ए और बी तथा कैल्शियम उच्च मात्रा में ट्यूबराईजेशन को प्रेरित करते हैं।

ट्यूबराईजेशन प्रक्रम के आण्विक अध्ययन

ट्यूबराईजेशन प्रक्रम के आण्विक अध्ययन में आण्विक तकनीक का हाल ही में प्रयोग किया गया। वानस्पतिक विज्ञान संबंधी ट्यूबराईजेशन प्रक्रम में साइटोकाइनिन की भी भूमिका होती है। आण्विक अध्ययन में साइटोकाइनिन जीन को और उसके प्रभाव का ट्यूबराईजेशन प्रक्रम में अध्ययन किया गया है। इन अध्ययनों से यह पता चलता है कि एग्रोबैक्टीरियम अंतरित आलू के पौधे में साइटोकाइनिन का स्तर बढ़ जाता है। आण्विक प्रयोगों से कई ट्यूबराईजेशन से संबंधित जीन की पहचान की गई है। सोलेनम ट्यूबरसम के पौधे से तैयार किया हुआ cDNA की कापी, ट्यूबर आरंभन के दौरान प्रेरित जीन को प्रदर्शित करता है। यह जीन तंबाकू (निकोटियाना टोबैको) के पौधे में उपस्थित होती है और यह पुष्पीकरण के समय टमाटर (लाइकोपरसिकॉन एस्कूलैनटम) में फल निर्माण के समय प्रेरित होता है। विभिन्न तकनीको से संबंधित

जीन को पहचाना गया है उसमें से दो cDNA की कापी को देखा गया है। ट्यूबराईजेशन के दौरान होने वाले परिवर्तनों को हम देख सकते हैं।

ट्यूबराईजेशन में प्रयोग पौधवद्र्धक पदार्थ

ताप और दीप्ति काल अंतर्जात स्तर पर पौधवद्र्धक पदार्थ की तरह उपयोग होते हैं। इस प्रकार ऊपर वर्णित कुल 8 प्रकार के पौधवद्र्धक पदार्थ होते हैं जो ट्यूबराईजेशन को प्रभावित करते हैं। जिब्रेलिन उसमें से निम्नलिखित प्रकार के अवरोधक प्रभाव दर्शाता है–

1. ट्यूबराईजेशन को प्रेरित करने वाली वातावरणीय दशा जिब्रलिन के स्तर को घटा देती है।
2. जिब्रेलिन का बहिर्जात अनुप्रयोग ट्यूबराईजेशन को धीमा अथवा अवरोध करता है।
3. वद्र्धक अवरोधक ट्यूबराईजेशन को जिब्रेलिन के अंतर्जात स्तर को घटाकर प्रेरित करता है।

ट्यूबराईजेशन को प्रेरित करने वाले दूसरे पौधा वद्र्धक पदार्थ का ऊपर वर्णन किया जा चुका है। अभी अलग–अलग पौधा वद्र्धक हर्मोनों की भूमिका अस्पष्ट है। पौधा वद्र्धक पदार्थ का ट्यूबराईजेशन कर प्रभाव ज्ञात और अज्ञात पदार्थों के बीच आकर्षण के फलस्वरूप होता है। यह अभी भी संभव है कि ट्यूबर प्रेरित करने वाले पदार्थ हो सकते हैं। इसके स्थायित्व के बारे में अभी पुष्टि नहीं हुई है।

भविष्य में ज्ञात और अज्ञात पौध वद्र्धक पदार्थों की खोज जारी है। वर्तमान में ट्यूबराईजेशन को बढ़ावा देने के लिए विशेषतः ट्यूबराइजेशन जीन की पहचान शोधकर्ताओं के लिए चुनौती बना हुआ है। भविष्य में आण्विक विज्ञान के अंतर्गत आण्विक तकनीक से जब यह पहचाना जा सकेगा तभी पादप हार्मोन की उपयोगिता के द्वारा ट्यूबर वाली फसलों को नई दिशा मिल सकेगी।

○○○

केला

जगनारायण

भारत के विभिन्न हिस्सों में उगने वाला शाकीय श्रेणी का फल केला मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत उपयोगी है। रोगों के निवारण के साथ ही मनुष्य के स्वास्थ्य वृद्धि के लिए भी यह विशेष उपयोगी है। यह कच्चा और पक्का दोनों ही रूपों में प्रयोग में लाया जाता है। प्रचुर लोह तत्व युक्त इसके सभी अंगों की अलग–अलग शारीरिक समस्याओं के निराकरण के लिए प्रयोग किया जाता है। विभिन्न भाषाओं में अलग–अलग नामों से संबोधित केले के भारत में प्रचलित कुछ नाम इस प्रकार हैः–

संस्कृत में–कदली, वारगा, भोज्याः हिंदी में–केला मराठी में– केला केलेः गुजराती में – केलु, केंदु, तेलगू में – अरंटि, फारसी में – माजः अरबी में – तनाः बंगला में – कला, केरा, अंग्रेजी में – प्लांटेन बनाना। इसका वानस्पतिक नाम 'मुसापैराडिसएका' है। यह 'मुसेसी' कुल की वनस्पति है।

प्राचीन युग में केला

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भी केले की चर्चा मिलती है। हिंदू परिवारों के पूजा–पाठ, शादी–ब्याह के मांगलिक अवसरों पर इसके पत्ते, फल और पेड़ का उपयोग होता है। बंगाल में केले के पत्ते पर भोजन करना, मंगलकारी और शुद्धता का प्रतीक माना जाता है। दक्षिण भारत में आज भी मेहमानों को केले के पत्ते पर भोजन कराना सम्मान का सूचक माना जाता है।

केला प्रभाव में शीतल तथा गुरु होता है। यह स्वाद में मीठा, रुचिकर तथा स्वादिष्ट होता है 'भाव प्रकाश निघंटु' में केलों के गुणों के बारे में कहा गया हैः

मोचाफलं स्वादुशीतं विष्टंमि कफनुद् गुरु।
स्निग्धं पित्तास्रतृड़ दाहक्षतक्षय समीरजित्।।
पक्वं स्वादु हिमं पाके स्वादुवृष्यं च बृहणम्।
क्षुतृष्णा नित्रगदहृघ्नं रुचिमांस वृत्।।

कच्चा केला मीठा, ठंडी तासीरवाला, ग्राही, भारी तथा स्निग्ध, भारी तथा स्निग्ध होता है। यह पित्त विकार, रक्तविकार, रक्तस्राव, प्साय, घाव, क्षय एवं वायुनासक है। पका केला मधुर, शीतल, रतिशक्तिवर्धक तथा पौष्टिक होता है। इसके सेवन से भूख, प्यास, नेत्र रोग एवं प्रमेह का नाश होता है। जब कोई आहार नहीं पचता है, तब पका केला दस्त को बांधने के लिए उपयोगी होता है। पके केले को खाकर ऊपर से दूध पीने से वीर्य की वृद्धि होती है।

केले के फूलों की सब्जी स्निग्ध, मधुर, काषाय, गुरु एवं शीतल होती है। यह वात पित्तजनित रोगों, रक्तपात एवं क्षय रोग में विशेष लाभप्रद होता है। केले का कंद (यह केले की जड़ में होता है और सब्जी बनाई जाती है।) यह शीतल, बलवर्द्धक, केशों के लिए हितकर, अम्लपित्तनाशक, अग्निदीपक, मधुर एवं रुचिकर होता है।

केले में पाये जाने वाले रासायनिक तत्व

केले में शरीर के लिए प्रायः सभी पोषक तत्व पाए जाते है। सौ ग्राम पके केले में कैल्सियम 17 मि. ग्राम, फॉस्फोरस 36 मि. ग्राम, लोह 0.9 मि. ग्राम, पोटेशियम 88 मि.ग्राम, तंतु 0.5 ग्राम, विटामिन 'ए' 68 माइक्रोग्राम, विटामिन 'सी' 7 मि. ग्राम और प्रोटीन 1.2 ग्राम होता है। इसके अलावा महत्वपूर्ण एंजाइम, सल्फर, तांबा, विटामिन 'बी' तथा अन्य विटामिन भी पर्याप्त मात्रा में

पाए जाते है। इसमें शर्करा 20 प्रतिशत तथा 116 कैलोरी ऊर्जा होती है।

वैज्ञानिक शोधों से पता चला है कि केले में 22 से 25 प्रतिशत तक कार्बोहाइड्रेट है जो आलू में भी है। लेकिन आलू में कार्बोहाइड्रेट स्टार्च के रूप में होता है जबकि पके केले में यह स्टार्च ईक्षु शर्करा एवं द्राक्ष शर्करा के रूप में होता है, जो छोटे बच्चों को भी सहज में ही हजम हो जाता है। केले में जो कैल्सियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, तांबा, कॉपर, सल्फर, लोहे आदि खनिज तत्व होते है, वे रक्त की क्षारीयता को बढ़ाते हैं जिससे वात, गठिया जैसे अम्लताजनित रोगों से बचाव होता है। इसमें पाए जाने वाले लोह और तांबा शरीर में शीघ्र ही रक्त के तत्व हीमोग्लोबिन के निर्माण में प्रयुक्त हो जाते है। अतः अरक्तता के रोगियों के लिए केला विशेष लाभदायक है।

पके केले में विटामिन 'ए' भी होता है जो संक्रामक रोगों से बचाता है और विटामिन 'सी' भी पाया जाता है जो स्वास्थ्यवर्धक है। पके केले में प्रोटीन अल्प मात्रा में होते हुए भी उच्चकोटि का होता है। सोडियम तथा प्रचुर मात्रा में कार्बोहाइड्रेट होने से गुर्दे की बीमारियों में लाभ होता है।

चीन के लोग प्राचीन काल में केले के फल का प्रयोग पीलिया, सिरदर्द, खसरा और पेट की कई बिमारियों में करते थे। आयुर्वेद में पके केले को ठंडा, रुचिकारक, पुष्टिकर, वीर्यवर्धक, रक्त विकार शामक, मांसवर्धक, पथरीनाशक, रक्त पित्त को दूर करने वाला, प्रदर व नेत्र रोगों में उपयोगी बताया गया है। काय चिकित्सा के जनक महर्षि चरक के अनुसार, भोजन के बाद, नियमित केले का फल खाने से मनुष्य निरोगी रहता है।

अफ्रीका मूल की शाकीय वनस्पति सदियों से भारतीय जन मानस में इतनी रच–बस गई है कि भारतीयों को इस से अलग किया जाना अब संभव ही नहीं है। वास्तव में आज केले का भारतीयकरण हो गया है। भारत में अधिकतम लोग यह यह मानने के लिए तैयार नहीं है कि केला भारतीय मूल की वनस्पति नहीं है। कुछ वनस्पतिविदों का भी यही कहना है। संस्कारों के साथ ही भारतीय जन मानस के समस्त आनुष्ठानिक और मांगलिक क्रिया कलापों में केले की किसी न किसी रूप में उपस्थिति अवश्य रहती है। यह भारत के सभी भागों में पाया जाता है।

आधुनिक युग में

आधुनिक खादय वैज्ञानिकों ने भी अपने शोध में केले को अत्यंत उपयोगी पाया है। जर्मनी के 'गोर्लिजन विश्वविद्यालय' के 'प्रो. फूडेल' ने अपने शोध के आधार पर सलाह दी है कि – मानसिक तनाव (डिप्रेशन) से ग्रस्त व्यक्ति को केले के फल का सेवन करना चाहिए। प्रो. फूडेल के अनुसार केले में सेरोटोनिन नामक तत्व पाया जाता है, इससे मानसिक परेशानी से मुक्ति मिलती है। रूसी वैज्ञानिकों ने अपने शोध परिणामों के आधार पर बताया है कि केला खाने से शरीर का समुचित विकास होता है, इसका नियमित प्रयोग करने वाले व्यक्ति का स्वास्थ्य उत्तम रहता है। ब्रिटेन स्थित 'एस्टन' विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान के आधार पर घोषित किया है कि पेट के अल्सर के लिए केले से अच्छी कोई और दवा नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने ऐसी तकनीक का विकास किया है जिसमें रोग निरोधक औषधीय टीकों को केले के फल में समावेशित किया जा सकेगा। इस प्रकार रोग निरोधक टीकों के रूप में केले के फल को खाने से काम चल जाएंगा और मनुष्य अनेक रोगों से सुरक्षित हो सकेगा।

केले की विशेषता

केले की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके समान पौष्टिक दूसरा अन्य कोई फल नहीं होता। केले में 'पोटेशियम' जैसे उच्च रक्तचाप को नियंत्रित करने वाले जरूरी तत्वों के अलावा विटामिन 'ए', 'बी' एवं 'सी' तथा 'नियासिन', 'राइबोफ्लेविन' और 'थायमिन' जैसे उपयोगी तत्व भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। केले में अम्लता विरोधी 'पोटेशियम', 'सोडियम', 'मैग्नीशियम' भी पाया जाता है। इन तत्वों की उपस्थिति के होते हुए केला खाने से रक्त क्षारीयता में वृद्धि होती है जिससे अम्लजनित रोगों पर रोक लग जाती है। केले में

कोलेस्ट्रॉल बिल्कुल नहीं पाया जाता। इसमें सेब से डेढ गुनी अधिक प्राकृतिक शर्करा पाई जाती है। बच्चों के लिए केला विशेष उपयोगी होता है, कमजोर बच्चों के लिए यह उपयोगी आहार है।

केले के कच्चे–पक्के फल, फूल और तने के बीचो–बीच जाए जाने वाले सफेद थोर (राड) जमीन के अंदर का प्रकंद तथा तने के रस में भी प्रचुर लोह तत्व होता है। इसके कच्चे फल के अलावा फूल और राड (थोर) की सब्जी का प्रयोग बंगाल और उड़ीसा के लोग प्राचीनकाल से करते आ रहे है। केले के तने के छिलके तथा पत्तियों से प्राप्त रेशों से चटाई तथा कपड़ा बनाया जाता है।

केले से बनने वाले व्यंजन

आहार के रूप में केले के कई तरह व्यंजन बनाकर प्रयोग किए जाते है। कच्चे केले की सब्जी, बोंडा, बिरयानी, जैम, कचौड़ी, बर्फी आदि व्यंजन बनाए जाते है। ये तरह–तरह के व्यंजन स्वादिष्ट तथा रुचिकर तो होते ही है, साथ ही पौष्टिक, स्वास्थ्यवर्धक, बलकारक एवं रोगनाशक भी होते ही हैं।

केले का शर्बत

केले का इलायचीयुक्त शर्बत बनाने के लिए 150 ग्राम पके केले के गूदे को 500 ग्राम पानी में डालकर धीमी आंच पर पकाना चाहिए। इससे सारी शर्करा पानी में उत्तर जाएगी। आधा पानी जल जाने पर उसे उतार कर छान लें, फिर रोगी को पिलाएं, यह पीने में भी शर्बत की भांति मजेदार एवं स्वादिष्ट होता है। केले का यह शर्बत खांसी, जुकाम, कफ, बुखार, अतिसार, भूख की कमी एवं कमजोरी में अत्यधिक लाभकारी है।

केले का आटा

कच्चे केले को धूप में सूखाकर बनाया गया आटा सबसे अधिक उपयोगी और महत्वपूर्ण होता है। यह आटा अनाज से अधिक पौष्टिक, सुपाच्य और खनिज तत्वों की दृष्टि से अधिक लाभप्रद होता है। इस आटे को दूध में उबालकर देने से बालक, वृद्ध, नर–नारी सभी के लिए आदर्श भोजन बन जाता है। यह आहार पेट के रोगियों तथा गठिया आदि में उपयोगी है।

केला सम्पूर्ण पौष्टिक आहार होने के कारण दुबले–पतले व्यक्तियों के लिए अत्यंत उपयोगी है। इसका उपयोग बल–वीर्य की वृद्धि करने, शरीर में मांसवृद्धि करने तथा शरीर को पुष्ट और सुडौल बनाने में खाद्य की तरह किया जा सकता है। इसे भोजन के साथ या अंत में खाना सबसे अच्छा रहता है। टायफाइड बुखार के रोगी के लिए, स्वप्नदोष, प्रमेह और अम्लपित्त रोगी के लिए उत्तम खाद्य एवं हितकारी आहार है।

केले का उपचारीय प्रयोग

- मिट्टी खाने वाले बच्चों को 5 ग्राम शहद के साथ प्रतिदिन केला खिलाना चाहिए। इसमें बच्चों के पेट के अंदर की पूरी मिट्टी बाहर निकल आएगी और बच्चा मिट्टी खाना छोड़ देगा।
- धूप में सुखाए गए केले को पीस कर बने आटे की रोटी खाने से अम्लपित्त और अग्निमांद्य से छुटकारा मिल जाता है।
- पेचिस में केले के साथ मिश्री, गुड़ या नमक मिलाकर खाने से पेचिश बंद हो जाती है।
- केले की जड़ को पीस लेप लगाने से कुष्ट रोग से मुक्ति मिलती है।
- टायफाइड (मियादी बुखार) में केला खाना लाभकारी रहता है।
- पेशाब की जलन और बहुमूत्र में सुबह–शाम केला खाना तथा पके केले के गूदे में केले का रस तथा शक्कर मिलाकर देने से आराम होता है।
- चर्म रोग में केले की जड़ को पीस कर लेप लगाने से छुटकारा मिल जाता है।
- मुंह और जीभ में छाला पड़ने पर पके केले को दही के साथ खाना लाभकारी रहता है।
- दाद में पके केले में नीबू का रस मिलाकर लेप लगाना चाहिए।
- चोट के कारण बने ताजे घाव से होने वाले रक्तस्राव में केले के तने का रस लगाने से खून बहना बंद हो जाता है। इससे घाव पकता नहीं और शीघ्र भर भी जाता है।
- यदि किसी कारणवश शरीर के किसी बाहरी भाग

3563 HRD/15—6A

पर चोट लग जाए तो पके केले को आटे में गूंथ कर लगाने से चोट का असर जाता रहता है और घाव वाले स्थान पर सूजन नहीं आती।

- बच्चों के साथ वयस्कों के दस्त, जठर रोग और बृहदांत्र शोथ, आमाशय–व्रण और पेट के अल्सर में भोजन के रूप में केले का प्रयोग लाभकारी रहता है। यह आंतों की सूजन को भी खत्म कर देता है।
- महिलाओं के श्वेत प्रदर में केला खाने के बाद शहद मिला गुनगुना दूध नियमित पीने से रोग से छुटकारा मिल जाता है।
- महिलाओं में होने वाले सोम रोग में केला अत्यंत लाभकारी है। इसके घरेलू–नुस्खे से मात्र पंद्रह दिन में ही सोम रोग ठीक हो जाता है। इस रोग के निवारण के लिए दो पका केला 20 ग्राम आंवले का रस, 10 ग्राम मिश्री मिलाकर सेवल करने से लाभ होता है।
- वीर्य अभाव में दो माह तक प्रतिदिन दो केले खाने के बाद एक गिलास गाय का दूध पीने से वीर्य और काम शक्ति में वृद्धि होती है। वीर्य वृद्धि के लिए केले को दूध के साथ मसल कर पीने से भी वीर्य की वृद्धि होती है।
- केला हृदय रोग में अत्यंत लाभकारी है। वैज्ञानिक शोध के अनुसार दिल के दौरे के तुरंत बाद केला खाने से रोगी की मृत्यु की संभावना 55 प्रतिशत घट जाती है। यह केले में पाए जाने वाले प्रचुर मैग्नीशियम की उपस्थिति के कारण होता है।
- काली खांसी में केले के पत्ते को जलाकर खरल करने के बाद उसमें एक ग्राम शहद दिन में तीन बार चाटने से काली खासी में आराम होता है।
- छोटे बच्चों के दस्त में पके केले को मसल कर मक्खन की तरह पतला बनाने के बाद इसे बच्चे को दिन में तीन बार चटाने से दस्त से आराम हो जाता है।
- जिस गर्भवती महिला को गर्भपात की संभावना रहे, उसे पका केला मथ कर शहद मिलाकर सेवन करना चाहिए।
- केले के तने का रस हिस्टीरिया के रोगी के लिए अत्यंत उपयोगी है। हिस्टीरिया के रोगी को रोज तीन बार एक–एक गिलास केले के तने का रस पिलाना चाहिए। केले के तने के इस रस को तीन से चार महीने तक लेने से हिस्टीरिया से छुटकारा मिल जाता है।
- संग्रणी, पेचिश और दस्त में दो–तीन केले और 150 ग्राम दही कुछ दिन लगातार खाने से आराम मिलता है।
- पेट में वायु गोला की शिकायत होने पर केले के भीतर पपीते का चार बूंद दूध डाल कर खाने से आराम हो जाता है।
- शरीर के बाहरी हिस्से पर होने वाले घाव में केले के पत्ते पर तिल का तेल लगा कर बांधने से घाव जल्दी ठीक हो जाता है।
- महिलाओं की योनि में होने वाली खुजली में केले के गूदे में आंवले का रस और मिश्री मिलाकर प्रतिदिन दो–तीन बार लेने से आराम हो जाता है।
- शरीर में पित्त की वृद्धि होने पर घी के साथ पका केला खाने से आराम हो जाता है।
- योनि में होने वाले शोथ में केले के छिलके को 5 ग्राम देशी घी के साथ सुबह–शाम लेना चाहिए।
- खूनी आंव में पके केले को आधा कप दूध में लेना चाहिए।
- कान बहने की समस्या में केले के पत्ते का रस निकालकर उसमें समुद्र फेन मिला कर इसे कान में डाल कर दो–तीन बार कान साफ कर लेने पर कान के बहने और दर्द में आराम हो जाता है।
- बढ़े हुए रक्तदाव में केले के तने के आधे कप रस में थोड़ा पानी मिलाकर पीने से रक्तचाप सामान्य हो जाता है।
- क्षयरोग से पीड़ित व्यक्ति को जब खांसी कष्ट देने लगे और अधिक मात्रा में बलगम निकले और तेज बुखार भी आ जाए तथा भूख भी न लगती हो तब केले के तने का रस निकालने के बाद उसे छानकर, दो–दो घंटे पर दो–दो घूंट दो माह तक लेने से रोग से छुटकारा मिल जाता है।

3563 HRD/15—6B

- पेट में अल्सर में कच्चे केले का चूरा (पाउडर) एक प्रमाणित औषधि है।
- लोह तत्व की प्रचुरता के कारण केला एनीमिया के रोगी के लिए अत्यंत लाभकरी है।
- बार–बार सूखी खांसी आने तथा पसलियों के दर्द में केले के साथ दो काली मिर्च दबाकर खाने के बाद एक चम्मच शहद चाटने से आराम होता है।
- पीलिया के रोगी के लिए कच्चे केले की सब्जी और भोजन के बाद पक्का केला खाना लाभकारी रहता है।
- नक्सीर के रोगी को पका केला, चीनी और दूध को एक साथ मिक्सी में मिलाकर पेय बनाकर 10 दिन तक नियमित लेना चाहिए।
- आग से झुलसी हुई त्वचा पर पके केले के पेस्ट का लेप करना चाहिए।
- केले के तने के रस को जले घाव पर लगाने से राहत मिलती है।
- केले के तने का रस मिर्गी (असस्मार) में उपयोगी है। यह पेट को शीतलता भी प्रदान करता है।
- केले के पत्ते को पीसने से बने लेप से दाद, खाज और खुजली का इलाज होता है।
- डायरिया (दस्त) में केले के पत्ते का रस मांड़ के साथ लेना चाहिए।
- केले के फल का रस पेट के दर्द तथा फेफड़े में जमे कफ में अत्यंत उपयोगी है।
- केला एक बहुत ऊर्जा वाला फल है। ताजे एवं सूखे केले के फल में आराम से घुलने वाली प्राकृतिक शर्करा अधिक मात्रा में पाई जाती है, जो कि खून में आसानी से घुल जाती है। इसलिए केला खाते ही शरीर को शर्करा के माध्यम से ऊर्जा (शक्ति) उपलब्ध हो जाती है।
- अधपका केला कब्ज एवं बवासीर के रोगियों के लिए लाभदायक है।
- शोध द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि केले में कुछ एंजाइम पाए जाते हैं मनुष्य के रक्त दाब को नियंत्रित करते हैं।

○○○

9

लाई (झूठ) डिटेक्शन मशीन

डॉ. जे.एल. अग्रवाल

लम्बे समय से ज्ञात है कि झूठ बोलते समय शरीर में बदलाव होते है, जिनका पता लगाकर अपराधी का पता लगाने के प्रयास होते है। अफ्रीका में संभावित अपराधी को चिडिया के अंडे दिए जाते थे, जिसका अंडा टूट जाता था, उसको अपराधी मान लिया जाता था। एक बार अकबर ने बीरबल से चोर पकड़ने के लिए कहा, बीरबल ने सभी संभावित व्यक्ति को एक–एक छड़ी दी और कहा कि जिसने चोरी की होगी, उसकी छड़ी रात में एक बालिस्त लंबी हो जाएगी, असली चोर ने छड़ी लंबी होने के भय से रात को छड़ी काट दी। सुबह उसकी छड़ी छोटी मिली, फिर उसने अपराध कबूल कर लिया। झूठ बोलने में सोचना पड़ता है तथा तनाव हो सकता है जिसके कारण शारीरिक बदलाव होते है। आधुनिक युग में सच झूठ का पता लगाने के लिए **लाई डिटेक्शन मशीन (पॉली ग्राफ)** का इस्तेमाल किया जाता है। इसका उपयोग पुलिस व सी.बी.आई. अपराधियों की जांच तथा उनसे अपराध कबूलवाने के लिए करती है। विकसित देशों में कुछ संवेदनशील, महत्वपूर्ण नौकरी से पूर्व पॉलीग्राफ जांच की जाती है जिससे उनकी सत्य निष्ठा की परख हो सके।

शरीर की जिन प्रक्रियाओं को हम स्वैच्छिक रूप से नियंत्रित नहीं कर सकते, जैसे हृदय, श्वसन गति, रक्तदाव, त्वचा की संवेदनशीलता मस्तिष्क की विद्युत तरंगें (ई.ई.जी.) इत्यादि की रिकोर्डिंग को **पॉलीग्राफ** कहते है। सच सोचने में इनमें विशेष बदलाव नहीं होते, जबकि झूठ बोलने पर घबराहट, डर, तनाव, सोच विचार करने के कारण इनमें बदलाव होते है। इन परिवर्तनों का विश्लेषण कर झूठ–सच का पर्दाफाश हो सकता है।

हांलाकि यह पूर्णतः विश्वसनीय विधि नहीं मानी जाती है, इसके अनेक आलोचक है अनके न्यायालय भी पॉलीग्राफ परीक्षण से प्राप्त विवरण को साक्ष्य नहीं मानते। फिर भी इसका उपयोग, अपराध कबूलवाने, जांच आगे बढाने, साक्ष्य इकठा करने में व्यापक रूप से होता है। पुलिस, सी.बी.आई., ए.टी.एस. पॉलीग्राफ परीक्षण या नारको परीक्षण करवाने के लिए न्यायालय से अनुमति लेती है, नारको परीक्षण की खबरें अक्सर समाचार में आती रहती है।

झूठ का पता लगाने के लिए अनेक विधियां विकसित की गई है जैसे पॉलीग्राफी, संज्ञानात्मक (कागनेटिव) पॉलीग्राफी, प्रकार्यात्मक (फंक्शनल) एम.आर.आई., कांटेक्ट, ब्रेनमेपिंग इत्यादि। दवाएं दी जाती है जिनके देने के पश्चात मानसिक स्थिति को नियंत्रित नहीं रख पाते तथा मोहित सी अवस्था में रहते है। इसके बाद उनका पॉलीग्राफ परीक्षण या मस्तिष्क की विद्युत तरंगों की पी–300 जांच ही नारको परीक्षण कहलाती है। दवाएं जैसे सोडियम थायोपेंटॉल को सच्चाई का पता लगाने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसका इंजेक्शन देने के बाद व्यक्ति अर्धमूर्छित सी अवस्था में रहता है और झूठ नहीं बोल पाता। ये दवाएं **ट्रुथ सीरम** (Truth Serum) भी कहलाती है। इन दवाओं का इंजेक्शन लगने पर भी व्यक्ति सत्य और कल्पना को मिला कर प्रश्नों का उत्तर दे सकते है। यदि बार–बार दोहराते है, कभी–कभी अपने को मन ही मन

गलत बात को सही ठहराते है, तो उनमें बदलाव नहीं होते है।

पॉलीग्राफ परीक्षण करने की विधि

परीक्षण करने से पूर्व न्यायालय की लिखित अनुमति और व्यक्ति की सहमति आवश्यक है। परीक्षण के पूर्व प्रारंभिक इंटरव्यू लिया जाता है, जिससे उसके संबंध में मूल जानकारी प्राप्त होती है, जिनका कंट्रोल प्रश्नों में इस्तेमाल किया जाता है। फिर जांचकर्ता परीक्षण की प्रक्रिया समझाते है, साथ ही उन्हें यह बताया जाता है कि परीक्षण से उनके सच–झूठ का पता लग जाता है, अतः वे प्रश्नों का उत्तर सही–सही दें। नारकों विश्लेषण के लिए उनको सोडियम पेंटोथॉल के इंजेक्शन दिए जाते हैं, जिसकी मात्रा, आयु, लिंग, स्वास्थ्य के अनुसार निर्धारित की जाती है। सामान्यतः व्यस्क, स्वस्थ व्यक्ति में 3 ग्राम दवा को 300 मि.ली. सलाइन में घोलकर धीरे–धीरे शिराओं के द्वारा दिया जाता है। दवा के प्रभाव से मस्तिष्क का नियंत्रण ढीला हो जाता है, वे मोहित अवस्था में आ जाते है और झूठ नहीं बोल पाते। परीक्षण के लिए इनके शरीर में विभिन्न ट्रॉसड्यूसर लगाए जाते है जिससे वांछित मापदंड कंप्यूटर पर रिकोर्ड होते है।

पहले उनसे कंट्रोल प्रश्न पूछे जाते हैं जैसे नाम, पिता का नाम, जन्मतिथि, शिक्षा आदि जिससे उनके सामान्य स्तर का पता लग सके फिर उनसे कुछ ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनका वे अधिकांश सही उत्तर नहीं देते, जिससे झूठ–सच में होने वाले बदलाव का उस व्यक्ति में पता लग जाता है। फिर, सार्थक जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्नों को विभिन्न रूप से पूछ कर उनके उत्तर देते समय होने वाल बदलाव को रिकोर्ड किया जाता है, प्रश्न करते समय और बाद में विश्लेषण कर झूठ–सच का पता लग सकता है। परीक्षण के पश्चात पुनः परीक्षण के दौरान कथनों की पुष्टि की जाती है। परीक्षण के समय फारेंसिक विशेषज्ञ, मनोचिकित्सक, संज्ञाहरण विज्ञानी की उपस्थिति अनिवार्य है। परीक्षण के लिए सही प्रश्न और उनको सही ढंग से पूछना अति महत्वपूर्ण है।

पी–300 टेस्ट

जब व्यक्ति किसी जानी पहचानी आवाज को सुनता है, फोटो/दृश्य को देखते हैं तो उनकी मस्तिष्क की विद्युत तरंगों (ई.ई.जी.) में विशिष्ट तरंगे पी. 300 उत्पन्न होती है। इस परीक्षण में व्यक्ति को कंप्यूटर मॉनीटर के सामने बैठा कर कुछ आवाजें सुनायी दृश्य/फोटो दिखाए जाते है, साथ ही ई.ई.जी. रिकार्ड किया जाता है जानी–पहचानी आवाज, दृश्यों के कारण पी.–300 तरंगे उत्पन्न होती है, जिससे उनके सच–झूठ को पकड़ा जा सकता है।

लाई डिटेक्शन परीक्षण के उपयोग

- अपराधियों से जुर्म कबूलवाने के लिए न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने के बाद।
- जांच को आगे बढ़ाने, साक्ष्य इकठा करने के लिए।
- कुछ संवेदनशील नौकरी जैसे जासूस, पुलिस, सेना इत्यादि में पॉलीग्राफ परीक्षण कर उनकी विश्वसनीयता, सत्य निष्ठा सिद्ध करने के लिए। सन 2008 से अमेरिका की डिफेंस इंटेलिजेंस एजेंसी ने अपने सभी अधिकारियों, कर्मचारियों के लिए हर वर्ष पॉलीग्राफ परीक्षण अनिवार्य कर दिया है।
- यौन अपराधियों को छोड़ने से पूर्व उनकी पॉलीग्राफ परीक्षण कई देशों में अनिवार्य हो गई हैं, जिससे उनके सुधरे आचरण की पुष्टि हो सके।
- इन परीक्षणों का उपयोग सच्चाई तथा जांच की पुष्टि में किया जा सकता है। जांच से प्राप्त सूत्रों से नए साक्ष्य ढूढ़ने में मदद मिल सकती है।
- अनेक टी.वी. कार्यक्रमों में भी लाईडिटेक्शन के कार्यक्रम सफल और चर्चित हुआ था।

लाई डिटेक्शन परीक्षण और कानून

इन जांचों की प्रमाणिकता और वैधता, हर देश में भिन्न–भिन्न है। अर्धमूर्छित, अचेतन व्यक्ति द्वारा नारको परीक्षण के दौरान अपराध स्वीकृति को अधिकांश न्यायालय पूर्ण रूप से साक्ष्य नहीं मानते। कोर्ट, वकीलों और न्यायाधीशों में इन परीक्षणों के निर्विवाद रूप से सही होने पर मतभेद है। कुछ व्यक्ति अपराधी होने पर भी इन परीक्षण में पास, जबकि निरपराधी फेल हो सकते है। कुछ अपराधी अपने गलत कार्य को सही मानने पर झूठ को सही मान सकते है। इस जांच के परिणाम से जांचकर्ता को अन्य साक्ष्य इकठा करने में मदद मिलती है। देश में इसको साक्ष्य मानना न्यायाधीश के विवेक पर निर्भर करता है। सुप्रीम कोर्ट ने 17 मार्च, 2010 में अति महत्वपूर्ण निर्णय दिया जिसमें नारकोटेस्ट को साक्ष्य मानकर अजय कुमार,पाल को मृत्युदंड की सजा दी, जिसने एक ही परिवार के पांच लोगों की हत्या की थी।

लाईडिटेक्शन परीक्षण की प्रमाणिकता

मनोचिकित्सक पॉलीग्राफ अर्थात नारको परीक्षण की प्रमाणिकता पर शक करते है। सर्वेक्षणों, शोधों से ज्ञात हुआ है कि इस परीक्षण के द्वारा सच उगलवाने की क्षमता करीब 61 प्रतिशत होती है। कुछ व्यक्ति सच बोलने के बावजूद भी पॉलीग्राफ परीक्षण में फेल हो जाते है।

अनेक अपराधी, जासूस, डबल एजेंट पॉलीग्राफ परीक्षण पास करने में सफल हुए हैं, जबकि कुछ पॉलीग्राफ परीक्षण में फेल होने पर गिरफ्तार हुए और उन्हें सजा हुई।

पॉलीग्रॉफ परीक्षण को विफल करने के लिए भी अनेक तरीके खोजे गए हैं। अब इंटरनेट पर पॉलीग्राफ परीक्षण विफल करने के अनेक ढंग बताए गए हैं जैसे शांत रहे, आराम करे, जांचकर्ता से मधुर संबंध बनाए और सहयोग दें। प्रश्न का उत्तर देते समय सावधानी पूर्वक श्वॉस नियंत्रित करें। कंट्रोल प्रश्न के दौरान यदि खतरे वाली स्थिति के उत्तेजनात्मक विचार मन में आते है या किसी नुकीली वस्तु को चुभाते हैं, तो उनकी हृदय, श्वसन गति आदि में बदलाव होते है, झूठ बोलने पर भी बदलते है। इस स्थिति में जांचकर्ता के लिए सच–झूठ में फर्क करना दुष्कर हो जाता है।

सच–झूठ का पता लगाने के लिए अन्य विधियों की खोज हो रही है। आशा है भविष्य में लाईडिटेक्शन की विधि पूर्णतः विश्वसनीय हो जाएगी। अपराधी की पहचान आसानी से हो सकेगी। पॉलीग्राफ, नारको परीक्षण से सच झूठ का पता लग सकता है, महत्वपूर्ण सुराग मिल सकते है, जिनमें अन्य साक्ष्य प्राप्त हो सकते है और अपराधी का सजा मिल सकती है।

ooo

10

मिर्गी : कारण एवं रोकथाम

डॉ. हंसराज पाल एवं डॉ. आशा पाल

व्यक्ति को मिर्गी का दौरा उस समय पड़ता है, जबकि विद्युतीय ऊर्जा का एक असामान्य प्रवाह कुछ मस्तिष्क कक्षिकाओं में होता है यह प्रवाह पास की कक्षिकाओं में फैल जाता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति बेहोश हो जाता है, उसका अपने आप पर नियंत्रण नहीं रहता है। मिर्गी का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि किन कक्षिकाओं से प्रवाह प्रारंभ होता है एवं वह कहां तक जाता है। मिर्गी से पीड़ित व्यक्तियों को बार–बार दौरे आते हैं। 6 प्रतिशत मानवों को जीवन में कभी–कभी दौरे आते ही हैं, किंतु उनमें से ज्यादा को यह पता नहीं चलता कि उन्हें मिर्गी है चूंकि उनको दौरा दूसरी बार नहीं आया। (बेटसा एवं पेरेट, 1986)

व्यक्ति को ज्यादातर दौरे छः वर्ष की आयु में अथवा वृद्ध होने पर आते हैं किंतु ये किसी भी आयु में आ सकते हैं। प्रायः यह बाल्यावस्था एवं वृद्धावस्था की घटना है, (हौसर एवं कुर्लेण्ड, 1975); दो वर्ष के पहले आने वाले दौरे विकासात्मक कमियों से संबंधित होते हैं, (कबाजूति, फेरारी एवं लल्ला, 1984); 25 वर्ष के बाद वाले दौरे दिमागी बीमारी के कारण होते हैं।

कारण (Causes)

मस्तिष्क में किसी प्रकार की क्षति के कारण ये दौरे आते हैं। इसमें सर्वाधिक सामान्य कारण है– पर्याप्त ऑक्सीजन की कमी, निम्न रक्त शर्करा, संक्रमण एवं शारीरिक चोट। दिमाग में होने वाली रासायनिक क्रियाओं के कारण भी दौरे पड़ने की संभावना बढ़ जाती है, (बेटसा एवं पेरेट, 1986); अनेक मामलों में इसका कारण अज्ञात रहता है, (वोलरेच, 1984)।

दौरों के प्रकार

अंतरराष्ट्रीय लीग ने दो मुख्य प्रकार के दौरे बताए हैं – सामान्यीकृत एवं आंशिक। सामान्यीकृत दौरे में मस्तिष्क के बड़े भाग में कक्षिका का स्राव होता है जबकि आंशिक दौरे में मस्तिष्क के आंशिक भाग में ही स्राव होता है इन दोनों प्रकार के दौरों के अनेक उपप्रकार भी होते हैं वे निम्न विधाओं में अलग होते हैं।

समयाविधि – स्राव कुछ सेकंड से लेकर कई मिनट तक हो सकता है।

आवृति – ये कुछ मिनट पश्चात् अथवा केवल वर्ष में एक बार घटित हो सकता है।

कारण – तेज बुखार, विषाक्तन, चोट इत्यादि के कारण मिर्गी का दौरा पड़ सकता है।

रोकथाम – इन्हें दवाई द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है अथवा केवल आंशिक नियंत्रण किया जा सकता है।

व्यापकता – सभी प्रकार के दौरे करीब 0.5 प्रतिशत आबादी में घटित होते हैं, (बोलराइच, 1984)।

मिर्गी दौरों में पीड़ितों के लिए प्राथमिक उपचार

अमेरिका के मिर्गी फाउंडेशन ने निम्न बाते बताई है:–

मिर्गी का दौरा कुछ मिनट के लिए होता है इसके लिए विशेष देखभाल की जरूरत नहीं होती है। निम्नलिखित सरल प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए।

- शांत रहिए – दौरा होने पर आप इसे रोक नहीं सकते। इसे अपनी अवधि पूरी कर लेने दीजिए। बच्चे को होश में लाने की कोशिश मत कीजिए।

- यदि बच्चा खड़ा हो तब उसे फर्श पर लिटा देना चाहिए एवं उसके कपड़े ढीले कर देना चाहिए।
- बच्चे का सिर किसी कठोर, धारदार अथवा गर्म वस्तु से टकराने से बचाइये किंतु उसके संचलनों को बाधा नहीं पहुंचाइए।
- बालक के सिर को ऐसा घुमाइये ताकि मुंह से लार बह सके।
- बालक के दांतों के बीच कोई वस्तु नहीं डालिए।
- यदि बालक कुछ क्षण के लिए सांस लेना बंद कर दे, चिंतित नहीं होइए।
- जब संचलन रुक जाता है तथा बालक सुस्ताता है और यदि वह चाहता है उसे सोने अथवा आराम करने दीजिए।
- सामान्यतः डॉक्टर को बुलाना आवश्यक नहीं होता जब तक कि दूसरा दौरा न आवे अथवा दौरा दस मिनट से अधिक समय तक रहता है।
- बच्चों के माता–पिता अथवा अभिभावकों को सूचना दीजिए कि बच्चे को दौरा आया है।
- दौरे के पश्चात् ज्यादातर लोग पहले जैसे सामान्य हो जाते हैं। यदि बालक को आराम देने के पश्चात् बालक लड़खड़ता, भ्रमित अथवा कमज़ोर दिखे उसे घर तक छोड़ देना अच्छा है।

यह एक चिकित्सीय समस्या है तथा प्राथमिक चिकित्सा की आवश्यकता होती है। शिक्षाशास्त्रियों को इस समस्या का सामना निम्नानुसार करना चाहिएः–

1. सामान्य एवं विशिष्ट शिक्षकों की आवश्यकता इन के सहयोग के लिए होती है। बच्चों के प्रति उन्हें किसी प्रकार के पूर्वाग्रह अंधविश्वास एवं अज्ञानता नहीं रखना चाहिए।

2. विशेष शिक्षकों को मिर्गी से पीड़ित बच्चों एवं उनकी समस्याओं के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए। अध्यापक को यह ध्यान देना चाहिए कि दौरे के पूर्व बालक क्या कर रहा था तथा बच्चे को दौरा कितने समय के लिए आया। इस सचूना से डॉक्टर को निदान एवं उपचार करने में मदद मिलेगी। यदि बच्चे का उपचार किया जाता है तब शिक्षक को उसकी दवाई एवं उसके होने वाले अन्य प्रभावों की जानकारी होनी चाहिए।

○○○

11

चार्ल्स डार्विन और जीव विकास

मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी

सर चार्ल्स डार्विन का जन्म सन् 1809 ई. में तथा जीव विकास के उनके सिद्धांत को प्रतिपादित करने वाली प्रसिद्ध पुस्तक 'ओरिजन ऑफ स्पेशीज एंड डिसेंट ऑफ मैन' का प्रकाशन सन् 1859 ई. में हुआ। इस प्रकार इस वर्ष डार्विन की 200वीं तथा उनके सिद्धांत की 150वीं जयंती है। विज्ञान के इतिहास में कुछ ऐसी क्रांतिदर्शी खोजे हुई या ऐसी नूतन संकल्पनाएं प्रस्तुत की गई जिन्होंने मनुष्य की सोच को एकदम झकझोर कर नई दिशा की ओर मोड़ दिया। विज्ञान का विकास ऐसी ही अनेक प्रतिभाओं के कारण हुआ है। आर्कमीडीज, कोपरनिकस, गैलीलियो, न्यूटन, हटन, एस्कोला आदि ऐसे ही वैज्ञानिकों की कड़ी में चार्ल्स डार्विन का नाम अवश्य ही सम्मिलित करना होगा।

पृथ्वी पर जीवों का क्रमिक विकास हुआ है इस बारे में डार्विन से पूर्व भी अनेक वैज्ञानिक सोच चुके थे परंतु इस विचार को उपयुक्त प्रमाणों के साथ एक सिद्धांत के रूप में सर्वप्रथम डार्विन ने ही रखा। उन्होंने शरीर रचनाओं, भ्रूण विकास आदि से संबंधित अनेक प्रमाण दिए परंतु सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण जीवाश्मों द्वारा प्राप्त हुए हैं। शैलों में पाए जाने वाले तथा शैल बन चुके जीवों के शरीर के अंश, जब मनुष्य को मिले तो प्रारंभ में उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। अब यदि किसी ऊंचे पहाड़ के पत्थर में मछली की हड्डी की आकृति दिखे तो कोई क्या कह सकता है? लोगों ने तरह–तरह की कल्पनाएं की। किसी ने कहा कि ये ईश्वर की गलतियां हैं अर्थात् जब भगवान तरह–तरह के जीव बना रहा था तो कुछ ऐसे बने कि उसे पसंद नहीं आए या अच्छे नहीं बने तो उसने उन्हें फेंक दिया। ये ही शरीर हमें पत्थरों में मिलते हैं। दूसरे कुछ अधिक आस्तिक थे। वे यह स्वीकार नहीं कर सके कि सर्वशक्तिमान ईश्वर भी कभी गलतियां कर सकता है। इसलिये उन्होंने कहा कि ये ईश्वर की नहीं शैतान की कारगुजारियां है। ईश्वर की देखा–देखी शैतान ने सोचा कि मैं भी प्राणी बना सकता हूं तो उसने भी शरीर तो बना लिये पर उनमें प्राण नहीं भर पाया। वे ही यहां पत्थरों में मिलते हैं।

परंतु धीरे–धीरे समझदार लोग अधिक तर्कपूर्ण ढंग से सोचने लगे। इटली के महान वैज्ञानिक, तकनीशियन, चित्रकार तथा चिंतक लियोनार्दो द विनसी ने यह प्रतिपादित किया कि ये संरचनाएं वस्तुतः कभी जीवित रहे प्राणियों के पत्थर हो चुके अवशेष ही है। आगे चलकर इंग्लैंड के एक इंजीनियर विलियम स्मिथ ने यह भी पाया कि अलग–अलग शैलों की परतों में मिलने वाले जीवाश्म भी अलग–अलग प्रकार के होते हैं। इस प्रकार जीवाश्मों का गहरा अध्ययन प्रारंभ हुआ। अब ज्ञात हुआ कि अत्यंत प्राचीन शैलों में जीवाश्म मिलते ही नहीं। उसके बाद के शैलों में जीवाश्म तो नहीं मिलते पर जीवन की उपस्थिति के प्रमाण अवश्य मिलते हैं। फिर जीवाश्म मिलने लगे परंतु वे प्रारंभिक कालीन शैलों में बिना रीढ़ की हड्डी वाले ही थे। बाद में रीढ़ की हड्डी वाले भी मिले। इन सबके अध्ययन से भूवैज्ञानिकों ने एक 'भूवैज्ञानिक समय सारणी' प्रस्तुत की तथा पृथ्वी के संपूर्ण इतिहास को आर्कियन, प्राग्जीनी (प्रोटीरोजोइक), पुराजीवी (पैलियोजोइक), मध्यजीवी (मीसोजोइक) तथा नूतनजीवी (सीनोजोइक) महायुगों में विभाजित किया। यह वर्गीकरण पूर्ण रूप से केवल जीवाश्मों के आधार पर ही था। डार्विन के जीव विकास के सिद्धांत की ये जीवाश्मीय प्रमाण अत्यंत दृढ़ता से पुष्टि करते हैं।

परंतु जीव विकास का सिद्धांत परंपरावादी धार्मिक विचारों से ग्रस्त मनुष्यों को पसंद नहीं आया। डार्विन के काल में भी उनका बड़ा विरोध हुआ। आज डार्विन के समय से हम बहुत आगे आ चुके हैं। अब जीवाश्म विज्ञान इतना विकसित हो चुका है कि जीव के प्रत्येक वर्ग ही नहीं, हर जाति, प्रजाति के विकास का क्रम भी बता सकते हैं। विकास कैसे होता है इसके सिद्धांत भी अधिक प्रामाणिक और तर्कपूर्ण दिये जा रहे हैं। आज हम जीन और डी.एन.ए. में होने वाले परिवर्तनों को नाप और देख सकते हैं। फिर भी अनेक दुराग्रही विद्वान अब भी कुछ अपनी ही चलाते हैं। अमेरिका में एक वर्ग ऐसा है जो विज्ञान अध्यापकों को इसके लिए बाध्य करता है कि विद्यार्थियों को जीव विकास का सिद्धांत न पढ़ाया जाए या पढ़ाया जाए तो यह भी बताया जाए कि ईश्वर द्वारा सारी सृष्टि की रचना का सिद्धांत भी उतना ही वैज्ञानिक है। कुछ विद्वानों ने एक नया मार्ग निकाला। वे भगवान का नाम तो नहीं लेते पर सृष्टि की उत्पत्ति की 'थ्योरी ऑफ इंटेलिजेंट डिजाइन' की बात करते हैं, अर्थात् कोई अत्यंत बुद्धिमत्तापूर्ण शक्ति है जिसके द्वारा सारे जीव बनाए गए। वे अपने विचारों को वैज्ञानिक भाषा का जामा भी पहना देते हैं।

परंतु इस पृथ्वी पर अलग–अलग युगों में, अलग–अलग स्थानों में रह चुके वे सारे जीव जो अब जीवित तो नहीं हैं परंतु जिनके शरीर के अश्मीभूत अवशेष अपनी कहानी कहने के लिए उपलब्ध है, जीव विकास के सिद्धांत की सत्यता को त्रिकालाबाधित सिद्ध कर रहे हैं और इस सिद्धांत के प्रणेता चार्ल्स डार्विन की स्मृति को चिरस्थायी बना रहे हैं।

○○○

3563 HRD/15—7A

3563 HRD/15—7B

वनस्पति उद्यान और जैवविविधता : कुछ नए प्रावधान

डॉ. नरेश चंद्र तिवारी

संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में जून, 1992 में ब्राजील के शहर 'रियो डी जनेरिया'' में ''पर्यावरण एवं विकास पर (कांफ्रेस ऑन एनवायरमेंट एंड डेवेलमेंट) का आयोजन किया गया था जो ''पृथ्वी सम्मेलन'' (अर्थ समिट) के नाम से प्रसिद्ध है। यह पहला अवसर था जब बड़ी संख्या में अनेक देशों के राष्ट्राध्यक्ष, एक स्थान पर एकत्र हुए और 'पर्यावरण तथा विकास' पर गंभीरतापूर्वक परिचर्चा की। इस अवसर पर प्रख्यात पर्यावरणविदों, वैज्ञानिकों तथा चिंतकों ने भी स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त किये।

इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य एक ऐसी प्रभावशाली कार्यनीति तैयार करना था। जिसके माध्यम से क्षरित हो रहे पर्यावरण को बचाया जा सके और संपोषणीय विकास किया जा सके।

सीबीडी पर प्रभाव

इस पृथ्वी सम्मेलन का मुख्य मुद्दा था 'जैव विविधता पर समागम'' (कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डाइवर्सिटी, सीबीडी)। इस पृथ्वी सम्मेलन में पारित प्रस्ताव पर भारत सहित 153 देशों ने हस्ताक्षर किये। बाद में अनेक देशों ने इस सम्मेलन के प्रस्तावों का समर्थन किया जिसके कारण जैव विविधता पर कुछ नियम व कानून एक विस्तृत प्रस्ताव के रूप में सामने आए। यह प्रस्ताव 29 दिसम्बर, 1993 को आधिकारिक रूप से स्वीकार किया गया। जिसे 190 से अधिक देशों ने मान्यता प्रदान की। इस प्रस्ताव में लगभग 42 अनुच्छेद हैं जिनमें से कई अनुच्छेदों का संबंध जैव विविधता पर समागम (सीबीडी) से है। इस सम्मेलन में एक विचार यह उभर कर आया कि विश्व के हजारों वनस्पति उद्यान परस्पर सहयोग से जैव विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते है। ये वनस्पति उद्यान दुर्लभ, स्थानिक, संकटग्रस्त तथा संकटापन्न पौधों के संरक्षण तथा प्रसार में उल्लेखनीय कार्य कर सकते है। इसका कारण है कि वनस्पति उद्यानों में अनुभवी वैज्ञानिक तथा तकनीकी अधिकारी होते है और वहां उच्चस्तरीय शोधकार्य करने की सुविधाएं उपलब्ध होती है। ये वनस्पति उद्यान जनजागराण का कार्य करने के लिए तकनीकी रूप से साधन सम्पन्न होते है।

जैव विविधता पर समागम के उद्देश्य

- जैवविविधता का संरक्षण
- इसके विविध घटकों का संपोषणीय उपयोग
- आनुवंशिक स्रोतों (पौध, बीज, कंद, प्रकंद और बीजाणु) के सही उपयोग से प्राप्त लाभांशों का पारदर्शी समान वितरण। इसमें आनुवंशिक स्रोतों का मूल्यांकन, तकनीक का अंतरण तथा उचित आर्थिक सहयोग सम्मिलित है।

वनस्पति उद्यानों से संबंधित मुख्य अनुच्छेद

लगभग 42 अनुच्छेदों में से अनेक अनुच्छेदों का संबंध जैविक स्रोतों से है। इन अनुच्छेदों का विश्व वनस्पति उद्यानों पर सीधा प्रभाव पड़ेगा तथा उनकी व्यावहारिकता भी प्रभावित होगी। यह प्रभाव निम्न प्रकार से हो सकते है:

जैवविविधता से संबंधित अनुच्छेद

सीबीडी–1 के अनुच्छेद

अनुच्छेद–10

- जैव विविधता के विभिन्न अंगों का संपोषणीय उपयोग।
- बागवानी, वानिकी तथा कृषि के लिए महत्वपूर्ण व्यावसायिक प्रजातियों की पहचान तथा उनका विकास।

अनुच्छेद–12

- अनुसंधान एवं प्रशिक्षण ।
- पारिस्थितिकी, लोकवनस्पति, बागवानी व पादप वर्गिकी आदि पर शोध कार्य।

सीबीडी–2 के अनुच्छेद

अनुच्छेद–6

- संरक्षण और संपोषणीय उपयोग के सामान्य उपाय।
- जैवविविधता के सरंक्षण तथा संपोषणीय उपयोग के लिए राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावशाली कार्यनीति का विकास तथा उसका प्रसार।

अनुच्छेद–7

- पहचान एवं देखभाल
- पादप वर्गिकी, व्यावसायिक पौधों की पहचान, उनका सूचीकरण व सर्वेक्षण आदि मुख्य कार्य जिन्हें वनस्पति उद्यानों द्वारा प्रमुखता से लिया जाना है।

सीबीडी–3 के अनुच्छेद

अनुच्छेद–8 : परस्थने संरक्षण

- संरक्षित क्षेत्रों, वासस्थानों का पुनर्स्थापन, पौध प्रजातियों की उपलब्धता बनाए रखने के लिए विकास की रणनीति तय करना, रूपरेखा तैयार करना, पौधों की देखभाल करना तथा इनकी व्यवस्था के लिए वनस्पति उद्यानों को सदैव तैयार रखना तथा योगदान देना।

अनुच्छेद–9 : परस्थाने संरक्षण

- पौधों का संग्रह जिसमें बीज बैंक, फील्ड बीज तथा ऊतक संग्रह आदि शामिल है, का विकास तथा उनकी व्यवस्था।

सीबीडी–4 के अनुच्छेद

अनुच्छेद–13 : जनशिक्षा एवं जनजागरण

- पर्यावरण के महत्व तथा जैव विविधता के क्षरण के प्रति लोगों को जागरूक करने के लिए जागरण कार्यक्रमों का विकास।

अनुच्छेद–15 : साधन और स्रोत

- वर्तमान में वनस्पति उद्यानों के पास अनुमानतः 4 मिलियन सूचीबद्ध उपसाधन (पौध सामग्री) उपलब्ध है जो जैविक संसाधनों का एक विशाल भंडार उपलब्ध कराते है। जिनसे प्राप्त लाभांश के वे भागीदार हो सकते है।

सीबीडी–5 के अनुच्छेद

अनुच्छेद–17 : सूचनाओं का आदान–प्रदान

- जननद्रव्य (पौध सामग्री) का संग्रह, अनुसंधान तथा पारस्परिक लाभों के पहलुओं से संबंधित सूचनाओं का आदान–प्रदान।

अनुच्छेद–18 : तकनीकी एवं वैज्ञानिक सहयोग

- वनस्पति उद्यानों के साथ मिलकर वैज्ञानिक पृष्ठभूमि भी होनी चाहिए जिससे वे दूसरे वनस्पति उद्योग के साथ मिलकर संयुक्त रूप से अनुसंधान कर सकें तथा अपने शोधकर्मियों की अदला–बदली भी कर सकें।

1. वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव तथा व्यावहारिकता

- वनस्पति उद्यान ऐसे संस्थानों या पादप केंद्र है जहां अनुसंधान, पादप संरक्षण, प्रदर्शन तथा शिक्षण के लिए साधन उपलब्ध होते हैं। साथ ही वहां उपलब्ध जीवित पौधों पर प्रमाणित, लिखित सामग्री भी मौजूद होती है। विश्व के 153 देशों में लगभग 2178 वनस्पति उद्यान हैं जहां प्रकृति से बाहर संख्या में जीवित पौधे संरक्षित हैं।
- अनुमान है कि ये वनस्पति उद्यान 6.13 मिलियन सूचीबद्ध जीवित पौधों की देखरेख कर रहे है जिनमें 80000 पादप प्रजातियां हैं। साथ ही 1420 लाख पादपालय नमूने भी मौजूद है।

2. वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव तथा व्यावहारिकता सी.बी.डी. के पूर्व सभी वनस्पति उद्यान विश्व स्तर

पर 'इंटरनेशनल इंडेक्स सेमिनम' (सीड लिस्ट/बीजों की सूची) के माध्यम से बिना किसी विशेष सावधानी व नियम–कानूनों के बीजों तथा अन्य पादप सामग्री के आदान–प्रदान के लिए स्वतंत्र थे। इस पारस्परिक आदान–प्रदान का मुख्य उद्देश्य, अपने वनस्पति उद्यानों में पौधों (जनन द्रव्य) के संग्रह में वृद्धि करना, पादप संरक्षण और व्यापारिक लाभ के लिए इनका उपयोग करना था। विश्व के वनस्पति उद्यान यह समस्त कार्य निःशुल्क और पारस्परिक सहयोग के आधार पर कर रहे थे।

अंतराष्ट्रीय स्तर पर अधिकांश वनस्पति उद्यान अनुसंधान संस्थान तथा विश्वविद्यालयों के वनस्पति विभाग अपने वनस्पति उद्यान में उपलब्ध पौध सामग्री, मुख्यतः बीजों की सूची प्रतिवर्ष तैयार करते है और इसे एक पुस्तिका के रूप में विश्व स्तर पर दूसरे वनस्पति उद्यानों को निःशुल्क भेज देते है। इस सूची को लैटिन भाषा में ''इंडेक्स सेमिनम'' (बीजों की सूची) कहते है। इस ''इंडेक्स सेमिनम'' या ''सीडलिस्ट'' के आधार पर कोई भी दूसरा वनस्पति उद्यान पारस्परिक आदान–प्रदान के आधार पर दूसरे देश के वनस्पति उद्यान से बीजों को निःशुल्क प्राप्त कर सकता है तथा इन बीजों से पौधे तैयार करके अपने वनस्पति उद्यान की जैव–सम्पदा में वृद्धि कर सकता है।

अब सीबीडी के पश्चात् परिदृश्य पूरी तरह बदल गया है। अब इसमें जैविक स्रोतों की सूचीबद्धता, आदान–प्रदान तथा लाभांश की भागीदारी भी जुड़ गई उद्यान से इसे प्राप्त किया गया है। यह कानूनी अधिकार इससे पूर्व नहीं था। इस तरह प्रदाता वनस्पति उद्यान का अधिकार दी गई पौध सामग्री पर बना रहेगा।

3. वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव एवं व्यावहारिकता

आरंभ में ऐसी संभावना व्यक्त की जा रही थी कि सीबीडी के प्रावधान, विश्व के वनस्पति उद्यानों पर बहुत कम प्रभाव डालेंगे। वनस्पति उद्योगों को भी आशंका थी कि सीबीडी के प्रभाव भविष्य में उनके प्रतिदिन के कार्यों को प्रभावित करेंगे।

यह भी आशंका थी कि क्या सीबीडी के प्रावधान वैज्ञानिक तथा शोध कार्यों के लिए जननद्रव्य के निःशुल्क आदान–प्रदान या पारस्परिक सहयोग के आधार पर पौध सामग्री के आदान–प्रदान को सीमित कर देंगे या रोक लगायेंगे अथवा ये प्रस्ताव उत्साहवर्धक सिद्ध होंगे और नई संभावनाओं को जन्म देंगे।

4. वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव एवं व्यावहारिकता

एक दृष्टि से सीबीडी दूसरे अंतरराष्ट्रीय समागमों से भिन्न है। उदाहरणार्थ इसके प्रावधान एक लक्ष्य निर्धारित करते है। कि बजाय इसके वे दुनिया के देशों को वैज्ञानिक लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए दबाव डाले या उन्हें बाध्य करे। अतः प्रावधानों में ऐसी कोई सूची नहीं है जिसमें पौधों के वास स्थानों व पौध प्रजातियों का नाम हों और उन्हें संरक्षण देने को कहा गया हो जैसे–''कंवेंशन ऑन इंटरनेशनल ट्रेड इन एनडेंजर्ड स्पीशीज ऑन फ्लोरा एंड फौना'' (सीआईटीईएएस) में।

यह समागम किसी भी देश या प्रशासन को पूरी स्वतंत्रता प्रदान करता है कि वे कैसे इन प्रावधानों को व्यवहार में लाएंगे। जैव विविधता का संरक्षण एक महान लक्ष्य है लेकिन सीबीडी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत एक ऐसा ढांचा प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर कोई भी देश समागम के प्रावधानों को व्यवहार में ला सकता है।

5. वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव एवं व्यावहारिकता

सोलहवें ''इंटरनेशनल बोटेनिकल कांग्रेस'' (सेंट लुईस, 1999) तथा ''गान कनेरिया डिक्लेरेशन'' (2000) के प्रस्तावों के अनुसार सीबीडी के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पौधों के संरक्षण के लिए एक वैश्विक कार्यनीति (ग्लोबल स्ट्रेटेजी फॉर प्लांट कंजरवेशन, डीएसपीसी) तैयार करने की आवश्यकता बताई गई थी। प्रस्तावों में जिन लक्ष्यों का उल्लेख था तथा जिन्हें ''जीएसपीसी'' में शामिल किया गया था उन्हें 2010 तक प्राप्त करना है। ये प्रावधान इस प्रकार है–

- ❖ पादप विविधता को समझना तथा उसका प्रलेखन।
- ❖ पादप विविधता का संरक्षण।
- ❖ संपोषणीय उपायों से पादप विधिधता का उपयोग।
- ❖ पादप विविधता के प्रति ज्ञान को बढ़ावा देना तथा जनसाधारण में जागरूकता बढाना।
- ❖ पादप विविधता के संरक्षण की क्षमता को विकसित करना।

अनुमान है कि वनस्पति उद्यानो में मौजूद लगभग 90 प्रतिशत पौधे सीबीडी के पहले से ही संरक्षित है।

6. वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव एवं व्यावहारिकता

- ❖ जब से सीबीडी के प्रावधान अस्तितव में आएं हैं तब से दुनिया के वनस्पति उद्यान राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय नीतियों तथा दिशा–निर्देशों को व्यवहार में लाने का प्रयत्न कर रहे हैं जिससे पीजीआरएस, जननद्रव्य का आदान–प्रदान वनस्पतियों का संरक्षण तथा उनके संरक्षण तथा उनके संपोषणीय उपयोगों का कार्य नये दिशा–निर्देशों के अनुसार किया जा सके।
- ❖ नए दिशा–निर्देशों के अनुसार कोई भी वनस्पति उद्यान किसी दूसरे देश से पादप सामग्री उस देश के नियमों, दिशा–निर्देशों तथा नीतियों के अनुसार ही प्राप्त करेगा।
- ❖ इस प्रकार किसी वनस्पति उद्यान के अधिकारियों को पादप सामग्री प्राप्त करने के लिए दूसरे देशों के नियम–कानूनों की जानकारी रखना आवश्यक हो गया है।

7. वनस्पति उद्यान पर प्रभाव एवं व्यावहारिकता

- ❖ हस्ताक्षर करने वाले देश से यह आशा की जाती है कि वह पादप विविधता के संरक्षण के लिए एक राष्ट्रीय रणनीति तैयार करेगा और उसे व्यवहार में भी लाएगा।
- ❖ वनस्पतियों का परस्थाने संरक्षण (एक्स सीटू कंजरवेशन) ही वनस्पति उद्यानों का मुख्य कार्य होगा। साथ ही अनुसंधान स्वस्थाने संरक्षण (इन सीटू कंजरवेशन) प्रशिक्षण, पौधों की सही पहचान करना, उनकी देखभाल, जनजागरण तथा लोगों को जागरूक, शिक्षित करना तथा उन्हें सहायता प्रदान करना, यह वनस्पति उद्यानों के मुख्य कार्य होंगे, जिनका सीबीडी में उल्लेख है।

8. वनस्पति उद्यानों पर प्रभाव तथा व्यावहारिकता

- ❖ सीबीडी ने इस बात को अधिक महत्व दिया है कि एक देश अपने आनुवंशिक स्रोतों (पौध सामग्री) को दूसरे देशों को भी उपलब्ध कराये। इससे दूसरे देशों में भी उस पौधे का विस्तार तथा संरक्षण हो सकेगा।
- ❖ दो देशों के मध्य, पादप आनुवंशिक पदार्थों का अंतरण परस्पर स्वीकृत शर्तों पर होना चाहिए।
- ❖ पादप सामग्री प्राप्त करने वाले वनस्पति उद्यान को उस पौध सामग्री पर किए गए शोध कार्यों के परिणामों तथा उनके सभी उपयोगों की जानकारी पौध सामग्री प्रदाता वनस्पति उद्यान को देनी चाहिए।
- ❖ आनुवांशिक स्रोतों से प्राप्त लाभ को पौध सामग्री कराने वाले वनस्पति उद्यान के साथ उचित ढंग से बटवारा करना चाहिए।

9. वनस्पति उद्यान पर प्रभाव एवं व्यावहारिकता

अनेक वनस्पति उद्यानों ने, जैसे रॉयल बॉटेनिक गार्डन, (कवि, यूके) तथा फेयर चाइल्ड ट्रापिकल गार्डन (फ्लोरिडा, अमेरिका) ने पादप अंतरण संधि (पीएमटीए) के लिए स्वयं ही अपने नियम बनाये है। ''द अमेरिकन एसोसियेशन ऑफ बॉटेनिक गार्डेन एंड आरबोरेटा'' (एएबीजीए) ने 1998 में एक प्रस्ताव पारित किया था कि सभी सदस्य वनस्पति उद्यान सी बीडी के सिद्धांतों तथा प्रावधान को लागू करेंगे। रॉयल बाटेनिक गार्डन (कीव, यू.के.) ने एक परियोजना स्वीकार की है कि यह संस्थान सी बी डी के प्रावधानों के अनुसार विश्व के वनस्पति उद्यानों के साथ लाभांश में भागीदारी करेगा। वनस्पति उद्यानों द्वारा बीजों के आदान–प्रदान की कार्य प्रणाली को मौलिक तथा व्यावहारिक ढंग से पुनर्गठित करना जिससे वे सी बी डी के प्रस्तावों के अनुसार कार्य कर सके।

सी बी डी पादप आनुवंशिक स्रोतों के उचित मूल्यांकन के आधार पर जैव विविधता के विभिन्न भागों के

संपोषणीय उपयोग को विशेष महत्व देता है। साथ ही विश्व के सभी वनस्पति उद्यानों को यह अवसर भी प्रदान करता है कि वे अपनी दी गई पौध सामग्री से दूसरे देशों से लाभांश प्राप्त कर सकें।

यद्यपि सी बी डी पौध सामग्री के निःशुल्क आदान–प्रदान पर रोक लगाता है लेकिन इससे आनुवंशिक सम्पदा के अति दोहन पर रोक लगी है। साथ ही सी बी डी विश्व के सभी वनस्पति उद्यानों को यह अवसर भी प्रदान करता है कि वे जैविक विविधता का संरक्षण तथा इसके लाभांश को प्राप्त कर सके।

10. वनस्पति जगत से संबंधित कुछ परिभाषाएं

जैव विविधता : जैव विविधता का अर्थ है भूमि की सतह, समुद्र, समस्त जलीय पारिस्थितिकी तंत्र व संयुक्त पारिस्थितिकी में उपस्थित जीवित पादप प्रजातियों में विद्यमान विविधता आनुवंशिक तंत्र।

इसका अर्थ है आनुवंशिक पदार्थ जिनसे नए पौधे तैयार कर सकते है जैसे बीजाणु, बीज, कंद प्रकंद, कलक।

आनुवंशिक स्रोत का मूल स्थान : इसका अर्थ है ऐसा स्थान (देश) जहां आनुवंशिक स्रोत मूल रूप से पाया जाता है।

आनुवंशिक स्रोत का उत्पादक स्रोत : इसका अर्थ है कि एक ऐसा देश जो आनुवंशिक स्रोत को उपलब्ध करा सकता है अथवा उस देश से आनुवंशिक स्रोत प्राप्त किया जा सकता है।

संपोषणीय उपयोग : इसका अर्थ है जैव विविधता के विभिन्न घटकों, भागों को इस प्रकार से तथा गति से उपयोग किया जाए कि उसे किसी प्रकार की क्षति न पहुंचे अर्थात् जैव विविधता को उपयोग में लाने के साथ–साथ उसकी देखभाल इस प्रकार से की जाए कि वह वर्तमान के साथ–साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित रहे।

प्राकृतिक आवास : इसका (स्वस्थाने कंडीशन) अर्थ वह स्थान जिसके पारिस्थितिक तंत्र और प्राकृतिक आवास में कोई आनुवंशिक स्रोत (पौधा) अपनी मूल अवस्था में अर्थात् प्राकृतिक रूप में उगाया जा सकता है।

वाह्य संरक्षण : प्राकृतिक आवास से अलग हटकर जब किसी अन्य स्थान पर कोई पौधा सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है तो उगाये गए पौधों को परस्थाने सरंक्षण (एक्स–सीटू कंजरवेशन) कहते है।

○○○

13

देवनागरी कंप्यूटर

डॉ. राम प्रसाद सिंह

आधुनिक युग कंप्यूटर युग के नाम से जाना जाता है। यों तो हर कंप्यूटर तंत्र या शब्द संसाधक (वर्ड–प्रोसेसर) की अपनी–अपनी विशेषताएं है, किंतु उनके मूल सिद्धांत एक ही है। उनके मुख्य अवयव भी एक ही है और एक ही तरह से काम करते हैं। उनकी निर्माता कंपनियां अपने शब्द संसाधकों में विशेषताएं, सुविधाएं और उपादेश विकसित करती हैं। इसलिए तदनुरूप उन पर कार्य करने की पद्धति में कुछ अंतर आ जाता है। कंप्यूटर से हिंदी में कामकाज किया जा सकता है, यह बात अब नई और आश्चर्यजनक नहीं रह गई है। पत्र, पुस्तक, पत्रिका आदि अनेक ऐसे कार्य है जो कंप्यूटर से भलीभांति बिना किसी दिक्कत के बहुत ही कम समय में किए जा सकते हैं। कंप्यूटर के लिए भाषा कोई समस्या नहीं है। सिद्धांत कंप्यूटर के लिए सभी भाषाएं आसान है। इसके लिए आठ बिटों से परिचलित मानक संकेत प्रणाली भी सोच ली गई है।

देवनागरी लिपि एक 'वैज्ञानिक लिपि' है। इस लिपि में कंप्यूटर से काम करना कठिन नहीं है। वैज्ञानिकों ने इस कार्य में सफलता प्राप्त कर ली है। ऐसे तो उनके ये प्रयास 1965 से चल रहे थे लेकिन 1970 के बाद उन्हें सफलता मिलनी शुरू हो गई। इस प्रसंग में आई.आई.टी., कानपुर का प्रयास उल्लेखनीय है। 1971–72 में आई.आई.टी., कानपुर में एक बहुत सरल कुंजी पटल और उसकी प्रणाली तैयार की गई, जिसे सभी भारतीय भाषाओं के लिए इस्तेमाल किया जा सकता था और काम करनेवालों को जटिल प्रक्रियाओं से मुक्ति मिल गई थी। सभी भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होने वाला पहला प्रोटोटाइप टर्मिनल 1978 में तैयार किया गया था।

अब पूर्णकृत देवनागरी कंप्यूटर आ चुका है। इसने मुद्रण, प्रकाशन, संप्रेषण और भारतीय भाषाओं में मशीन संचालन की समस्याओं की गुत्थी को सुलझा दिया है। इस कंप्यूटर का विकास जिन वैज्ञानिकों के सहयोग से पूरा हुआ इनमें सर्वोपरि है – आई.आई.टी., कानपुर के कंप्यूटर वैज्ञानिक सहायक प्रो. डॉ. आर. एम. के. सिन्हा, इनके सहयोगी इंजीनियर मोहन लम्बे, प्रो. डॉ. एस. के. मल्लिक आदि विशेषज्ञ थे, जिनका परिश्रम सफलीभूत हुआ। नई दिल्ली में आयोजित तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर इस कंप्यूटर को प्रस्तुत भी किया गया था।

अमेरिका और जापान में भी देवनागरी कंप्यूटर तैयार करने के प्रयत्न सफल हुए हैं। मुम्बई, दिल्ली, कलकत्ता और बैंगलूर में कुछ कंपनियां भी ऐसे कंप्यूटर के निर्माण में लगी है।

एक 'बाइट' (अर्थात् आठ–बिट) की संकेत–प्रणाली से द्विभाषी कंप्यूटर बन सकता है। भारतवर्ष में 'सिद्धार्थ' नाम का पहला द्विभाषी कंप्यूटर बना। यह अंग्रेजी और हिंदी दो भाषाओं में काम कर सकता है। इसमें हिंदी के साथ–साथ तमिल, गुजराती, मराठी, बंगला आदि का भी उपयोग हो सकता है। इस कंप्यूटर का निर्माण प्रौद्योगिकी संस्थान, पिलानी और डी.सी.एम. ने मिलकर किया था।

आई.आई.टी., कानपुर ने जो अंग्रेजी–हिंदी कंप्यूटर तैयार किया वह अधिक विकसित है। इसमें अंग्रेजी के 7 बिट मानक संकेत–प्रणाली को 8 बिट प्रणाली में विस्तृत करके देवनागरी के लिए स्थान बनाया गया है। रोमन लिपि के अक्षरों को इलेक्ट्रॉनिक व्यवस्था से दृश्यपटल पर अंकित करने के लिए अनेक तरह की

व्यवस्थाएं हैं। डॉटमैट्रिक्स से देवनागरी के जो अक्षर बनते हैं वे काफी सुंदर दिखाई देते हैं। बिंदुओं, रेखाओं और वक्रों की योजनाओं से अक्षर सुंदर बनाए जा सकते हैं। इस कार्य के लिए गणितीय व्यवस्थाएं हैं। अतः इलेक्ट्रॉनिक साधनों से अक्षरों या चिह्नों को अनेक प्रकार के रूप दिए जा सकते हैं। इन साधनों के अधिकाधिक प्रयोग से नए–नए प्रकार के डिजाइन तैयार किए जा रहे हैं ताकि सुंदर और तरह–तरह के अक्षर प्राप्त किए जा सकें।

एक सर्वाधिक विकसित कंप्यूटर तैयार किया गया है जिसका नाम 'लिपि' है जिसमें अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी, तमिल, मराठी, तेलगु, कन्नड, मलयालम आदि में से किन्हीं दो भाषाओं की व्यवस्था संभव है। 'लिपि' में मानक शब्द संसाधक के सभी साधन है – इंटेल का 8088 चिप, 256KB स्मृति आंतरिक शब्दकोष, वर्तनी (स्पेलिंग) ठीक करने की व्यवस्था, भारतीय भाषाओं के शब्दों के साथ ही अंग्रेजी शब्दों को रखने की व्यवस्था, लिप्यांतरण की व्यवस्था आदि। 'लिपि' के 30 सेमी. दृश्यपटल पर 40 अक्षर प्रतिपंक्ति वाली 12 पंक्ति दर्शायी जा सकती है।

शब्दमाला नामक अंग्रेजी–हिंदी शब्द संसाधक भी तैयार किया गया है। इसमें 114 संकेतों का हिंदी कुंजी पटल है। पिछले दिनों हिंदीट्रॉन (मुम्बई) की ओर से 'आलेख' नामक शब्द संसाधक बनाया गया है। इसमें अनेक सुविधाएं है। अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी और मराठी भाषाओं में काम करना इस पर संभव है।

देवनागरी कंप्यूटर का मुख्य उपयोग मूल पाठ तैयार करने में है। इसमें एक अक्षर को टाइप करने से लेकर एक पूरी पत्रिका, पुस्तक या समाचारपत्र को तैयार करना तक शामिल है। इन सभी कार्यों के लिए आवश्यक व्यवस्था कंप्यूटर में रहती है। तैयार किए गए सभी मूल पाठ फाइलों में भंडारित किए जा सकते हैं। उनमें संशोधन किया जा सकता है। मूल पाठ को तैयार करने की सारी प्रक्रिया में कागज़–कलम की जरूरत नहीं पड़ती। सब कुछ कंप्यूटर की स्मृति में रहता है और उसे स्क्रीन पर देखा जा सकता है।

देवनागरी कंप्यूटर से विभिन्न प्रकार के फार्म भी तैयार करके उन्हें स्मृति में रखा जा सकता है और जब आवश्यकता पड़े उन्हें निकाला जा सकता है। देवनागरी कंप्यूटर से ड्राइंग या ग्राफ का काम भी किया जा सकता है। यह पूर्ण देवनागरी कंप्यूटर अन्य कंप्यूटरों जैसा ही है। उसमें कोई अलग कठिन संचालन व्यवस्था नहीं है। अतः इसके कुंजी पटल से अंग्रेजी का काम, बिना किसी परिवर्तन के किया जा सकता है।

कंप्यूटर द्वारा अनुवाद की कठिनाईयों पर भी विजय प्राप्त करने के प्रयास किए जा रहे हैं। अंग्रेजी से हिंदी में कंप्यूटर अनुवाद की दिशा में बैंगलूर, पिलानी और दिल्ली के संस्थान सक्रिय है। एक भारतीय भाषा से दूसरी भारतीय भाषा में अनुवाद अपेक्षाकृत आसान है क्योंकि बहुत बड़ी संख्या में समान शब्दावली है और व्याकरणिक समानता भी मिलती है।

अनुवाद कार्य के लिए निम्नलिखित का उपयोग होता है:–

1. कोश (डिक्शनरी)
2. भाषिक विश्लेषणात्मक अध्ययन

कंप्यूटर अनुवाद तब तक संभव नहीं है जब तक कि द्विभाषी कोश तैयार न हो। प्रारंभ में भाषात्मक विश्लेषण और कंप्यूटर क्रमादेशन को साथ–साथ रखा गया। बाद में अनुभव किया गया कि दोनों को अलग–अलग करना उचित होगा, क्योंकि भाषिक विश्लेषण में किसी कारण से परिवर्तन करना पड़े तो सारा क्रमोदश बदलना पड़ेगा जो पर्याप्त श्रमसाध्य होगा।

इस दिशा में सफलता प्राप्त की जा रही है।

संदर्भ

1. डॉ. हरिमोहन, कंप्यूटर और हिंदी, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. विज्ञान गरिमा सिंधु (कंप्यूटर विज्ञान विशेषांक), अंक 38, वर्ष 1999, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली।

ooo

3563 HRD/15—8A

14

मोदल : उड़ीसा की एक अद्‌वितीय तसर रेशम कीट पारि–प्रजाति

डॉ. के. मोहन राव

उड़ीसा के सिमिलिपाल जैवमंडल (Biosphere) में मोदल नामक तसर पारि–प्रजाति प्राप्त होती है। जिसने गुणवत्ता एवं उत्पादन की दृष्टि से प्रथम स्थान प्राप्त किया। मोदल के सभी गुणवत्ता कारक सराहनीय है। उड़ीसा के मयूरगंज, केंदुझर तथा ढेंकनाल जिलों के आदिवासियों के लिए मोदल कोसा संग्रहण धन प्राप्त करने का एक उपयुक्त साधन रहा है। पिछले कई सालों से मोदल कोसा की कमी के कारण मोदल पारि–प्रजाति का संरक्षण एवं संवर्धन के लिए सार्थक प्रयास आवश्यक हो गया है ताकि मोदल की संख्या में बढ़ोत्तरी हो एवं सिमिलिपाल जैवमंडल संभागों के आदिवासियों को अधिक से अधिक लाभ मिले।

रेशम उत्पादन में भारत, चीन के बाद द्‌वितीय स्थान पर है। भारत की विशेषता यह है कि यहां पांच किस्म का रेशम उत्पादन हो रहा है। उदाहरणस्वरूप इन्हें मलबरी (Mulberry), उष्णमंडल तसर (Tasar), शीत मंडल तसर (Oak Tasar), मूगा (Muga), एवं अरंडी (Eri) रेशम कहते हैं। इन पांच प्रकार के रेशम उत्पादन में भारत का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। इन सभी किस्मों का रेशम, अपनी–अपनी रेशमकीटों से जनित कोसों द्‌वारा उत्पन्न होता है। इन पांच रेशम के प्रकारों में से तसर, ओक तसर एवं मूगा का पालन वनों में होता है अर्थात् इन रेशमकीटों को बहिरंग/जंगली पारिस्थितिक स्थानों में पाला जाता है, लेकिन मलबर तथा अरंडी रेशमकीट गृहपालित है। इन सभी प्रकार के रेशम को मिलाकर भारत प्रतिवर्ष 18,000 मेट्रिक टन तक कच्चे रेशम का उत्पादन करता है।

मलबरी रेशम चमकता हुआ मुलायम रेशम है। मूगा रेशम स्वर्ण रंग के कारण अधिक प्रसिद्‌ध है। अरंडी रेशम रुई जैसा गर्म रहता है। तसर तथा ओक तसर का रेशम प्राकृतिक और लाजवाब है। इन पांच किस्मों में से तसर रेशम कोसों से सर्वाधिक रेशम धागा उत्पन्न होता है। रेशमकीट की विभिन्न प्रजातियां अपने–अपने भोज्य वृक्षों के पत्ते खाकर रेशम की कोसा बनाते हैं जिनसे रेशम का धागा बनाया जाता है।

तसर रेशम के कीट जंगलों में रहते है। इन्हें जंगली परिवेश के अलावा किसी अन्य स्थान पर अंतरित नहीं किया जा सकता है। देश के विभिन्न प्रांतों की वन्य शृंखलाओं में विभिन्न पारि–प्रजाति के तसर रेशम कीट पाले जाते हैं। उनमें से मोदल नामक तसर रेशम कीट के पारि–प्रजाति विख्यात है।

उड़ीसा के पश्चिम प्रांत की वन्य शृंखला 'सिमिलिपाल' के नाम से प्रसिद्‌ध है। यह मयूरगंज, केंदुझर तथा ढेंकनाल जिलों तक फैला हुआ है। भारत की प्रसिद्‌ध वन्य शृंखलाओं में 'सिमिलिपाल' जैवमंडल का नाम सुपरिचित है। इस सिमिलिपाल जैवमंडल के वन्य जीवों में से रेशमकीटों की विभिन्न पारि–प्रजातियों के वर्ग से

3563 HRD/15—8B

संबंधित 'मोदल' नामक एक अद्वितीय तसर रेशम कीट पारि–प्रजाति बसती है। मोदल, तसर रेशम कोसों के धागाकरण से प्राप्त रेशम की मात्रा, भारत की विभिन्न वन्य श्रृंखलाओं से प्राप्त कई तसर रेशम पारि–प्रजाति के रेशम कोसों से अधिक है। कोसों का भार ज्यादा है तथा कोसों का गठन भी सख्त हैं। मोदल का रेशमकीट भी 'एन्थेरिया मैलिट्टा' के नाम से ही जाना जाता है।

'सिमिलिपाल' जैवमंडल में मोदल के रेशमकीट अपनी समष्टि बना चुके हैं, लेकिन इसकी जीवन क्रिया एक चक्र तक ही पर्याप्त रहती है। उन इलाकों के आदिवासी जैवमंडल के संभागो के इलाकों से मोदल के रेशम कोसों को संग्रहण कर मैदानी इलाकों में बीजागार प्रक्रिया द्वारा अंडे बनाकर, अधिक मात्रा में कीटपालन कर उन इलाकों से जीवनयापन करते हैं। इस फसल द्वारा उत्पन्न हुई कोसों को 'बोगाई' (Bogai) कहते हैं।

उड़ीसा राज्य में वर्षों से परंपरागत रेशम उत्पादन की प्रक्रिया में इन वन्य श्रृंखलाओं के सीमांतर प्रांतो से संग्रहण द्वारा रेशम कोसों की उपज और उत्पादन हो रहा था। इसी मध्यांतर में राष्ट्र के रेशम कोसाओं का उत्पादन बढ़ाने हेतु, पहाड़ी इलाकों से समांतर प्रांतो तक मोदल रेशमकीटों का अंतरण कर बोगाई नामक रेशम कोसों का उत्पादन किया गया है। वर्ष 1977 तक मोदल से बनी 'बोगाई' रेशम कोसों द्वारा ही तसर उत्पादन में वृद्धि हुई है। पहले मैदानी इलाकों में रेशमकीट पालन द्वारा रेशम उत्पादन बढ़ाने के लिए कोई रेशमकीट पारि–प्रजाति उपलब्ध नहीं थी। मोदल पारि–प्रजाति का अंगीकरण समांतर प्रांतो में न होने को कारण, इधर मोदल को वाणिज्यक रूपांतरण नहीं दिया जा सकता था। तत्पश्चात् इन चार दशकों में आदिवासी लोगों को जीविकोपार्जन का अन्य विकल्प देने के लिए एवं मैदानी इलाकों में सहज रेशमकीट पालन के लिए लाए गए 'डाबा' तथा 'सुकिंडा' तसर पारि–प्रजातियों के कारण राज्य के वन्य तसर रेशम कोसों का उत्पादन अधिक हुआ, लेकिन उस बढ़ोतरी की खुशी मात्र अल्पकालिक थी। जहां वर्ष 1980 में मोदल/बोगाई तसर रेशम कोसों का उत्पादन 6750 कहाण था (एक कहाण = 1600 कोसा) वर्ष 1999 में राष्ट्र में रेशम का उत्पादन 570 कहाण तक घट गया था। संक्रमण के कारण इन 'डाबा' तथा 'सुकिंडा' प्रजातियों के कीट बराबर रोगग्रस्त हो जाते थे जिसके कारण राष्ट्र में रेशम उत्पादन कम हो गया। तदुपरांत उड़ीसा राज्य में तसर उत्पादन में वृद्धि एवं साथ–साथ प्राकृतिक मोदल रेशमकीट को संरक्षण प्रदान करना अति आवश्यक हो गया। इसके अलावा 'सिमिलिपाल' जैवमंडल का पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के प्रयास जारी है।

मोदल पारि–प्रजाति का विस्तार

सिमिलिपाल जैवमंडल तीन प्रांतों में विभाजित है पेरिफेरल (Peripheral), बफर (Buffer) एवं कोर (Core)। पहले, सिमिलिपाल जैवमंडल के पेरिफेरल प्रांतों में वन्य तसर मोदल रेशम कोसा अधिक संख्या में मिलते थे लेकिन प्रकृति में बदलती हुई जलवायु परिस्थितियां, जंगलों के उजड़ने के कारण भोज्य वृक्षों की कमी, एवं रेशम कासों का अनुचित संग्रहण के कारण पिछले कई वर्षों से सिमिलिपाल जैवमंडल के पेरिफेरल तथा बफर क्षेत्रों में मोदल रेशमकीटों का लोप हो गया एवं 'कोर' क्षेत्र के अंदर तक इस वन्य तसर मोदल का अकस्मात अंतरण हो गया है। इसके कारण वन्य तसर रेशम के मोदल कोसों का उत्पादन भी कम हो गया है। इस कारण मोदल रेशमकीट सरंक्षण हेतु विभिन्न परियोजनाएं कार्यरत है।

मोदल तसर कीटों के भोज्य वृक्ष

वन्य तसर मोदल के रेशमकीट कई भोज्य वृक्षों के पत्ते खाते हैं, लेकिन मुख्यतः साल यानि बीजा (शोरिया रोवष्ठा), आसन (टेर्मिनलिया टोमेन्टोसा) एवं अर्जुन (टेर्मिनलिया अर्जुना) के पत्ते मुख्य हैं। ये तीनों प्रथम कोटि के भोज्य वृक्ष हैं। इन मुख्य भोज्य वृक्षों के अलावा कुसुम (स्केलईखेरा ओलियोसा), महुआ (मधुका इंडिका), चार (बुखनानिया लंजन), धला (अनोतीसस लेटिफोलिया), कुंभि (कोरिया आर्बोरिया), जामुन (सिजिजियम कुमिनी), हरिडा (टेर्मिनलिया चेबुला), बहाडा (टेर्मिनलिया बलेरिका) आदि द्वितीय कोटि के भोज्य वृक्ष माने जाते हैं, लेकिन मोदल से बनी बोगाई तसर रेशमकीट, केवल आसन या अर्जुन पौधों के पत्ते ही खाते हैं।

मोदल कोसों का गुणवत्ता प्राचल

सिमिलिपाल जैवमंडल के संभागों से संग्रहित मोदल रेशम कोसों को परखते ही उनकी उत्तम गुणवत्ता पता चलती है। मोदल रेशम कोसा का कवच बहुत मज़बूत एवं रेशम से भरपूर है, लेकिन उसी जैवमंडल के विभिन्न स्थानों से संग्रहीत कोसों में रंगभेद ज्यादा ध्यान आकर्षित करता है। अर्थात् मोदल रेशम कोसों से भूरे रंग, भूरा–काला एवं काला–पीला रंगों के कोसा प्राप्त होते हैं लेकिन सामान्यतः मोदल रेशम कोसा गहरे–भूरे रंग का होता हैं।

मोटे, मज़बूत कोकुल कवच के साथ–साथ पृष्टवृतंक (Peduncle) एवं स्वच्छ तथा स्पष्ट गोलाकार मोटा वृंतक वलय (Peduncle Ring) की उपस्थिति मोदल रेशम कोसों की पहचान एवं उनकी गुणवत्ता व्यक्त करता है। वृंतक की लंबाई लगभग 4.3 से 6.5 सेमी. के बीच रहती है। वृंतक वलय का व्यास लगभग 1.08 सेमी. से 1.14 सेमी. तक रहता है। एक जीवित मोदल कोसा के कोकुल का भार लगभग 17.00 ग्राम से 21.00 ग्राम तक होता है। नर मोदल रेशम कोसा अपेक्षाकृत छोटे आकार का एवं मादा कोसा बड़े आकार की होती है। मादा मोदल रेशम कोसा का भार लगभग 13.00 ग्राम से 21.50 ग्राम तथा नर कोसा का भार लगभग 9.00 ग्राम से 17.00 ग्राम तक होता है। कोसा का आयतन 20.00 सी.सी (नर) से 50.00 सी.सी. (मादा) तक होता है। मोदल के प्रत्येक कोसा से लगभग 1600 मीटर तक रेशम धागा उत्पन्न होता है। मोदल से प्राप्ति कम होने पर भी इन मोदल कोसों से 73.00% तक कच्चा धागा प्राप्त किया जा सकता है। यह शुभ संकेत है कि सिमिलिपाल जैवमंडल के विभिन्न संभागों में से प्राप्त मोदल रेशम कोसों से बनी 'बोगाई' कोसों में बहुत अंतर दिखाई देता है।

'बोगाई' रेशम कोसा छोटे आकार के होते हैं एवं इनके वृंतक लंबे तथा नरम रहते हैं। बोगाई कोसों से अधिक से अधिक 700 मीटर रेशम धागा प्राप्त किया जा सकता है। जबकि, बोगाई कोसों को रेशम बीज उत्पादन के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता है कारण यह है कि इनका शलभ निर्गमन में कोई नियंत्रण नहीं है।

मोदल रेशमकीट का जीवन चक्र

प्रकृति में मोदल रेशमकीट का प्रजनन लगभग मार्च से लेकर मई तक होता है। जुलाई में ही कोसा बनते एवं प्राप्त होते हैं। संभवतः साल पौधों पर पत्ते निकलते ही मोदल का प्रजनन प्रारंभ होता है जिसे प्रकृति का करिश्मा ही कहा जा सकता है। यह मोदल कोसा अगले साल मार्च माह तक प्रकृति में ही रहते हैं, अनंतर उनका प्रजनन प्रारंभ होता है। इन कोसों का बीज संबर्धन के लिए उपयोग किया जाता है लेकिन सिर्फ मैदानी इलाकों में एवं सिर्फ अगस्त माह में, जिसका नाम है 'बोगाई'। चूंकि 'बोगाई' का पुनर्जनन संभव नहीं हो पाता अतः बोगाई बनने के लिए प्रत्येक बार वन्य मोदल रेशम कोसा का ही संग्रहण करना आवश्यक होता है। इस बात पर भी गौर करना आवश्यक है कि बोगाई कोसों का प्रकृति में रख–रखाव नहीं किया जा सकता है। अर्थात् मोदल का जीवन चक्र वार्षिक है। अंग्रेजी में इसे 'यूनीवोलटाईन' कहते हैं। मोदल का जीवन चक्र निम्नवत है।

मोदल रेशमकीट का बीजागार :– मोदल कोसों का बीजागार पर शोधकार्य से यह प्रतीत होता है कि अप्राकृतिक परिस्थितियों में मोदल का बीजागार सफल नहीं होता है। युग्मन में तथा युग्म तैयारी में कमी एवं अल्प अंडों का उत्पादन दिखाई देता है। हस्त युग्मन का प्रयास भी असफल रहा, लेकिन प्राकृतिक परिस्थितियों में मोदल बीजागार सफल रहा। शलभ निर्गमन (Moth Emergence) में 86% सफलता एवं अधिक शलभ युग्मन प्राप्त हुआ। कोसा : रो.मु.च. का निष्पत्ति (Coocon : DFI Ratio) 6:1 रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि मोदल के बीजागार के लिए प्राकृतिक परिस्थितियां ही सहायक होती है। यानी मोदल स्वस्थाने ही अपने जीवन चक्र को सफलतापूर्वक चलाता है तथा मोदल

का संवर्धन व जीवनशैली, साल पौधों के पत्तों के साथ सामंजस्य रखती है।

मोदल रेशमकीट का पालन :– मोदल रेशमकीट का पालन अप्राकृतिक परिस्थितियों में असफल रहा है। जलवायवीय अवस्था में अस्थाई भेद के कारण कीटपालन के दौरान जीवाणु–रोग तथा विषाणु–रोग की व्याप्ति होती है एवं अनेक मोदल रेशमकीट नष्ट होते हैं। सिमिलिपाल जैवमंडल संभाग के इलाकों में 'गुडगुडिया' तथा 'सरत' में अगस्त–सितंबर में किया गया स्वस्थाने कीटपालन असफल रहा एवं केवल 13 नग मोदल कोसा प्राप्त हुआ। यह कोसा घटिया किस्म के हैं। स्वस्थाने, उक्त अवधि में कोसा के उत्पादन में कमी से यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति में इस तरह के कोसा अधिक संख्या में प्राप्त नहीं होते। राज्य सरकार रेशम विभाग समवायु समितियों के कोसा विक्रय सूचनाओं से यह पता चलता है कि प्रकृति में अगस्त–सितंबर के अवधि में मोदल कासा का उत्पादन अधिक संख्या में नहीं होता है।

पुनः शोधकार्य प्रयासों के तहत स्वस्थाने तथा परस्थाने मोदल के कीटपालन की व्यवस्था की गई है। इस कीटपालन के लिए फरवरी–मार्च में प्राकृतिक 'झांजी' मोदल कोसा ही बीजागार के लिए प्रयोग की गई है जबकि परस्थाने (Ex-situ) कीटपालन असफल रहा। सिमिलिपाल जैवमंडल के पेरिफेरल इलाकों 'कप्तिपदा' में किए गए कीटपालन द्वारा अधिक मोदल कोसा का उत्पादन हुआ एवं इन कोसों की गुणवत्ता भी बनी रही। अतः जब इन कोसों द्वारा रो.मु.च. बनना असफल हुआ तो प्रकृति में 'बोगाई' कोसों के उत्पादन पर प्रश्नचिह्न लग गया।

निष्कर्ष

मोदल एक अनमोल तथा अद्वितीय तसर पारि–प्रजाति है जो मानव का अंतरक्षेप नहीं चाहती है। मोदल तसर रेशम कोसों के उत्पादन में बढ़ोतरी के लिए रेशम जैवमंडल के संभागों में स्वस्थाने संरक्षण एवं संवर्धन अति आवश्यक है। इसे बरकारर रखने के लिए शोधकार्यों के परिणामों के आधार पर प्राकृतिक मोदल कोसा फरवरी–मार्च की अवधि में ही संग्रहण कर स्वस्थाने परिस्थितियों में परिरक्षण कर, मई–जून में जैवमंडल के संभागों के इलाकों में कीटपालन फसल सफल बनाएं।

ooo

15

कैसे आरंभ करें मत्स्य पालन

डॉ. सुशांत पुणेकर

भारत में प्राचीनकाल से ही मत्स्य पालन का प्रचलन रहा है। मछली की मांग बढ़ने के कारण उसके उत्पादन पर ध्यान देना आवश्यक है। आधुनिक परिवेश में मत्स्य पालन पारंपरिक व्यवसाय न होकर वृहत व्यवसाय का रूप ले रहा है। जिसका मुख्य कारण जनसंख्या की तीव्र वृद्धि व खाद्य में आए बदलाव हैं एवं लोगों द्वारा मांसाहार को पसंद करना है। मछली का मांस सुपाच्य, स्वादिष्ट एवं बहुत पौष्टिक होता है। इसके मांस में पौष्टिक तत्व बहुतायत में पाए जाते हैं और प्रोटीन की मात्रा (14–21 प्रतिशत) है जो अन्य किसी खाद्य पदार्थों की तुलना में काफी अधिक है। टिकाऊ खेती एवं सुनिश्चित रोज़गार के संदर्भ में मत्स्य पालन उद्योग के रूप में काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हो रहा है।

कम लागत के तालाब निर्माण हेतु अनुपजाऊ भूमि, ईट भट्टे के गड्डे, जल भराव, बाढ़ग्रस्त क्षेत्र का चयन उपयुक्त होता है। रेतीली, ऊसर, कंक्रीली, बंजर और लवणयुक्त भूमि तालाब बनाने हेतु उपयुक्त नहीं होती है। तालाब के निर्माण हेतु 0.2 से 1.0 हेक्टेयर का क्षेत्रफल सुविधाजनक व उपयुक्त होता है। उपरोक्त चयनित जमीन पर स्थित ऊंचे, नीचे व टीले युक्त भूमि को समतल करके तालाब को आयताकार आकार में रखना उपयुक्त होता है, जिससे जाल चलाने व मछलियों को पकड़ने में सुविधा होती है। तालाब की गहराई 1–1.5 मीटर, बंधों (मेड) की ऊंचाई 1.5–2 मीटर व चौड़ाई 3–4 मीटर (वर्गाकार) होनी चाहिए ताकि बाढ़ का प्रभाव तालाब पर न पड़े।

तालाब पर वर्षा ऋतु में जल प्लावन से बचाने हेतु पानी के प्रवेश एवं जाने के द्वार (इनलेट एवं आउटलेट) का निर्माण आमने–सामने की बंध (मेड) पर करे व उन पर महीन जाली भी लगाए ताकि पाली जाने वाली मछलियां बाहर न जा सके तथा बाहर से देशी अनावश्यक मछलियां जैसे–दढई, भूर, बजरियां आदि तालाब के अंदर न आ सके। साथ ही तालाब के बंधों की सुरक्षा हेतु फलदार वृक्षों, फूलों के पौधे एवं सब्जियों का तालाब निर्माण के प्रथम वर्ष में मेड़ में लगाना आवश्यक होता है। यह सुरक्षा के साथ–साथ अतिरिक्त आय भी प्रदान करती है।

नये तालाब की तैयारी

नये तालाब हेतु गोबर की खाद (एक माह से तीन माह पुरानी) 5.6–6.6 टन प्रति हेक्टेयर तालाब में पानी भरने से पूर्व पूरे तालाब की तलहटी पर अच्छी तरह से फैला दें। जो मछलियों के प्राकृतिक आहार की पूर्ति एवं मछलियों की वृद्धि में सहायक होती है। साथ ही रासायनिक खाद जैसे यूरिया 250 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर व सुपर फास्फेट 200 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर को गोबर के ऊपर छिड़काव करने से प्लवकों का उत्पादन बढ़ जाता है। तालाब के पानी व मिट्टी की अम्लता के आधार पर सामान्य पी.एच. वाले तालाब में चूना 250 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से तालाब में पानी भरने के बाद उपयोग करें। उर्वरकों के प्रयोग के पश्चात् नये तालाब में 50–100 मीटर की दूरी पर स्थित बोरिंग के पानी को तालाब में भरना प्रारंभ कर, पहले एक फिट ही भरे और संभव हो तो ट्रैक्टर के माध्यम से पडलिंग/कंधर अवश्य करवाएं। जिससे मिट्टी व गोबर का अच्छा मिश्रण बनने से तालाब द्वारा पानी सोखने की संभावनाएं कम होती है। फिर धीरे–धीरे

तालाब में पानी का स्तर बढ़ाते जाएं। एक से दो सप्ताह के बाद पानी का रंग पहले हल्का हरा फिर गहरा हरा होने लगाता है जो तालाब में प्राकृतिक भोजन की प्रचुरता को प्रदर्शित करता है, इस समय मछलियों की विभिन्न प्रजातियों का मत्स्य बीज संचय किया जा सकता है।

पुराने तालाब की तैयारी

पुराने पट्टेधारी ग्राम पंचायत तालाब में मेढ़ों व पानी के प्रवेश व निकास द्वार/मार्ग की मरम्मत आवश्यक होती है। तालाब में उपस्थित जलीय हानिकारक खरपतवार, जलीय कीट एवं अनावश्यक व मांसाहारी मछलियों को निकलवाना चाहिए। इसके लिए यदि पौधों की मात्रा कम हो तो जाल चलाकर या हाथ से निकाला जा सकता है। हानिकारक कीटों के नियंत्रण के लिए साबुन/तेल (18:56) किलोग्राम प्रति हेक्टेयर, देशी व अनावश्यक मांसाहारी मछलियों के नियंत्रण हेतु 250 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से महुआ की खल तालाब में डालना चाहिए। यह दोनों वस्तुएं जलीय कीट व मछलियों के लिए विष का कार्य करती है तथा इसका प्रभाव पानी में 10–15 दिन तक रहता है, इसके उपरांत 1–3 माह पुरानी गोबर की खाद 0.5–0.7 टन प्रति हेक्टेयर की दर से साथ ही 50 किलोग्राम यूरिया व 50 किलोग्राम सुपर फास्फेट को गोबर के ऊपर डालने के पश्चात ही तालाब का इस्तेमाल करें। इस गोबर की खाद को तालाब के चारों तरफ से पानी के ऊपर फैलाकर या नाव के माध्यम से डालें। फिर एक सप्ताह के उपरांत 250 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से चूने का इस्तेमाल करें तथा 10 दिन के पश्चात मत्स्य बीज का संचय तालाब में करें।

मत्स्य प्रजातियों का संचय

भारतीय मूल व विदेशी मूल की मछलियों की विभिन्न प्रजातियों को उनके आहार, वृद्धि, स्वभाव एवं पानी की विभिन्न सतह पर मछलियों के आवास के आधार पर मत्स्य तालाब में एक साथ पाला जाता है जो प्राप्त जल के पारिस्थितिकी तंत्र को सुचारू बनाए रखती है, इस प्रकार के मत्स्य उद्योग की आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी को "मिश्रित मत्स्य पालन" कहा जाता है।

भारतीय मेजर कार्प एवं विदेशी मेजर कार्प मछलियों को छः हजार अंगुलिकाओं को प्रति हेक्टेयर जल क्षेत्र में उनके आवास एवं संचय अनुपात को निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका – तालाब में मत्स्य प्रजातियों की मिश्रित संख्या एवं उनका अनुपात (मत्स्य बीज का संचय 600 अंगुलिकाओं का प्रति हेक्टेयर की दर से)

क्रमांक	मत्स्य प्रजाति	मत्स्य तालाब में आवास	यदि तीन प्रजातियों का तालाब में संग्रहण	यदि चार प्रजातियों का तालाब में संग्रहण	यदि छः प्रजातियों का तालाब में संग्रहण
भारतीय मेजर कार्प					
1.	कतला	ऊपर सतह	4	3	1.5
2.	रोहू	मध्य भाग	3	3	2.0
3.	मृगला	तलहटी	3	2	1.2
विदेशी कार्प					
4.	सिल्वर कार्प	ऊपर सतह	–	–	2.0
5.	ग्रास कार्प	मध्य भाग	–	–	1.5
6.	कामन कार्प	तलहटी	–	2	1.5

तालाब के पानी में घुलनशील ऑक्सीजन एवं प्लवक की जांच

मछली पालन की दृष्टि से तालाब का पानी अल्प अम्लीय या अल्प क्षारीय पी.एच. (6.5–7.5) सर्वोत्तम माना गया है। इसके लिए तालाब में पी.एच. पेपर के द्वारा जांच करके यह मात्रा सुनिश्चित कर सकते हैं। मछलियों को पानी में विलित ऑक्सीजन श्वसन क्रिया के लिए आवश्यक होती है, जो 5–12 पी.पी.एम. मत्स्य पालन के लिए अनुकूल होती है। प्लवक जो अतिसूक्ष्म, मुक्त तैरने वाले, चलने–फिरने की क्षमता क्षीण, केवल जल तरंगों पर ही निर्भर रहने वाले, वनस्पतियां एवं जीव–जंतु हैं जो मछलियों का प्राकृतिक आहार होता है। इसे प्लवक संग्रह जाल में जांच करके तालाब में उसकी उपस्थिति को जान सकते हैं।

मत्स्य बीज की जांच एवं उसका परिवहन

तालाब में मत्स्य बीज संचय करने से पूर्व 20–25 अंगुलिकाओं (Fingure Fry) को पानी में हापा बांधकर पानी विषाक्ता की जांच कर लेनी चाहिए। साथ ही मत्स्य बीज की प्लास्टिक की थैली या बर्तन को बिना खोले तालाब में तैरती अवस्था में 30 मिनट तक रखना चाहिए जिससे थैली के अंदर व बाहर का तापमान एक जैसा हो जाए। तत्पश्चात् मछली को तालाब में छोड़ना चाहिए। मत्स्य बीज का परिवहन सांयकाल/प्रातःकाल करना अच्छा होता है।

मत्स्य तालाब में प्राकृतिक आहार में प्लवक (वनस्पति व जीव–जंतु) की उपस्थिति सुनिश्चित कर लेने के बाद ही कृत्रिम आहार की व्यवस्था भी करनी चाहिए। इसके लिए तालाब में संचित कुल मछलियों का कुल अनुमानित वजन का 2–3 प्रतिशत कृत्रिम आहार जिसमें चावल का चोकर/पॉलिस व कोई भी एक खल जैसे– सरसों, मूंगफली, सोयाबीन 1:1 में मिलाकर व गोले बनाकर तालाब के चारों तरफ डालना चाहिए।

मछलियों के रोग का नियंत्रण

मछलियों में विभिन्न प्रकार के रोग जैसे–पूंछ व पंख गलन, आंखों का बाहर निकलना, अल्सर, ड्रॉप्सी, कार्प पॉक्स, गिल गलन, परजीवी, प्रोटोजोआ रोग आदि की संभावना हो सकती है। किंतु मुख्य रूप से एपीजोटीक अल्सरेटीव सिंड्रोम (कैंसर) का प्रभाव मत्स्य के तालाब पर अधिक देखा गया है। इस हेतु सिफेक्स (Cifax) नामक दवाई एक लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करके इस रोग का नियंत्रण कर सकते हैं।

मछलियों की बिक्री तालाब में जाल द्वारा 15 दिन के अंतराल में मछलियों को एकत्र करके एक किलोग्राम से बड़ी मछलियों को स्थानीय बाज़ारों या नजदीक के बड़े शहरों में मांग के आधार पर उचित मात्रा एवं मूल्य में बेचा जा सकता है।

ooo

16

मूंगफली की वैज्ञानिक खेती मुनाफे का सौदा

डॉ. वीरेन्द्र कुमार

हमारे देश में उगाई जाने वाली तिलहनी फसलों में मूंगफली का विशेष स्थान है। तिलहनी के अंतर्गत क्षेत्रफल व उत्पादन की दृष्टि से मूंगफली का प्रथम स्थान है। भारत में 8.40 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल में मूंगफली की खेती की जाती है। जबकि देश में मूंगफली का कुल उत्पादन 89.0 लाख टन है। विश्व के कुल मूंगफली उत्पादन का 25 प्रतिशत भारत में ही पैदा होता है। हमारे देश में मूंगफली की खेती प्रमुख रूप से गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा तथा महाराष्ट्र में की जाती है। मूंगफली खाद्य तेल का एक अच्छा स्रोत है। मूंगफली के दानों में 45–50 प्रतिशत तेल होता है जिसका प्रयोग वनस्पति घी बनाने में किया जाता है। इसके दानों में लगभग 25.1 प्रतिशत प्रोटीन तथा 10.2 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट की मात्रा पायी जाती है। मूंगफली के दानों में पाई जाने वाली प्रोटीन की पाचन योग्यता बहुत अधिक होती है। अन्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा मूंगफली में ऊर्जा भी बहुत अधिक होती है। मूंगफली के तेल का प्रयोग कोल्ड क्रीम, साबुन, शैविंग क्रीम व कई तरह के सौंदर्य प्रसाधनों के बनाने में भी किया जाता है। मूंगफली में विटामिनों और खनिज लवणों की भी प्रचुर मात्रा होती है। खनिज लवणों में फास्फोरस, कैल्शियम व लोहा अधिक मात्रा में पाया जाता है। तेल निकालने के बाद बची हुई खली पशुओं के स्वादिष्ट व पौष्टिक आहार के रूप में भी प्रयोग की जाती है। मूंगफली के दानों को अलग करने के पश्चात हरे पौधों को चारे के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा मूंगफली एक फलीदार फसल होने के कारण वातावरण की नाइट्रोजन का यौगिकीकरण कर जमीन को दोबारा उपजाऊ बनाने में भी मदद करती है। भारत में मूंगफली की औसत पैदावार 1005 कि.ग्रा./हे. है। मूंगफली की उत्पादकता दिनों दिन घटती जा रही है जिसका प्रमुख कारण किसानों द्वारा इस फसल में उन्नत कृषि न अपनाना और विशेषकर उर्वरकों का असंतुलित तथा कम मात्रा में प्रयोग करना है। प्रस्तुत लेख में दी गई उन्नत सस्य प्रौद्योकियों को अपनाकर किसान मूंगफली की पैदावार में डेढ से दो गुणी बढ़ोतरी कर सकते है।

जलवायु

उष्ण कटिबंधीय पौधा होने के कारण मूंगफली की खेती 50–125 सेमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती है। इसे समुद्र तल से 1065 मीटर की ऊंचाई तक उगाया जा सकता है। इसकी वानस्पतिक वृद्धि व फली बनने के समय 27–30° से तापमान उपयुक्त रहता है। पकने के समय गर्म और शुष्क मौसम की आवश्यकता होती है।

भूमि का चयन और तैयारी

मूंगफली की खेती के लिए बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। मृदा में कैल्सियम और जीवांश पदार्थ पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए। साथ ही जल निकास की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए। खेत की पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद 3–4 जुताईयां कल्टीवेटर से करके मिट्टी को चूर्णित व भुरभुरी बना लेना चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगायें ताकि मृदा में नमी संचित बनी रहे।

उन्नत प्रजातियां

आजकल मूंगफली की अनेकों उन्नत प्रजातियां किसानों के लिए उपलब्ध है। स्थानीय व परंपरागत किस्मों की तुलना में इनकी पैदावार 15–20 प्रतिशत अधिक होती है। अतः किसानों को नवीनतम व उन्नत प्रजातियों को ही बोना चाहिए। साथ ही साथ इन प्रजातियों में रोगों और कीटों का भी कम प्रकोप होता है। मूंगफली की स्थान विशेष के अनुसार सुझायी गई प्रजातियों का विवरण निम्न प्रकार है।

गुजरात – सोमनाथ, आई.सी.सी.एस. 37, टी.जी. 22 टी.जी. 26, टीजी 3, जी.जी. 6, गिरनार 1, जे. 11, जीएयूजी 1, आइसीजीएस 44, वीआरआई 2, जीजी 12 आदि।

आंध्र प्रदेश – कादरी 3, जे.एल. 24, गिरनार 1, तिरुपति 3, तिरूपति 4, के. 134, जेसीसी 88, आईसीजीएस 11, आईसीजीएस 44, आइसीजीएस 76, वीआरआई 4 आदि।

कर्नाटक – आईसीजीएस 11, केआरजी 1, गिरनार 1, टीएमवी 2, कौशल, आईसीजीएस 44, टीजी 17, 26 एम 206 आदि।

तमिलनाडु – आईसीजीएस 44, जेएल 24, टीएमबी 2, वीआरआई 1, वीआरआई 2, वीआरआई 3, वीआरआई 4, वीआरआई 5, डीएमआर 1 आदि

महाराष्ट्र – कादरी 4, प्रगति, गौरव, जेएल 24, आईसीजीएस 37, करद 4–11, गिरनार 1, आईसीजीएस 11, जवाहर, गंगापुरी, ज्योति, टीजी 198 आदि।

राजस्थान – चित्रा, आरएसबी 87, एम 13, आरएस 1, एके 12–24, जेएल 24, जीजी 2, आईसीजीएस 1, आरजी 141, आरजी 144, मुक्ता, प्रकाश एचएनजी 10, वीएयू 13 आदि।

मध्य प्रदेश – जवाहर, गंगापुरी, ज्याति, आइसीजीएस 11, कौशल, एचएनपी 10, टीजी 24 आदि।

उत्तरी राज्य– एस.जी 44, एसजी 84, पंजाब मूंगफली नं. 1, आईसीजीएस 37, आईसीजीएस 76, मुक्ता, चित्रा, प्रकाश, एचएनजी 10, एमएस 4, टीजी 22, एम 335, डीआरजी 17, आईसीजीएस 9, वीएयू 13 आदि।

बुवाई का समय

खरीफ मौसम की फसल की बुवाई का उचित समय जून का दूसरा पखवाड़ा है। बुवाई करने से पूर्व पलेवा अवश्य करें। इससे बीजों का अंकुरण जल्दी व एक समान रूप से होता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में वर्षा प्रारंभ होने पर जब मृदा में पर्याप्त नमी हो, तब मूंगफली की बुवाई कर देनी चाहिए। उत्तरी भारत में बुवाई जुलाई के प्रथम पखवाड़े में अवश्य कर लेनी चाहिए। देर से बुवाई करने पर मूंगफली की पैदावार में अत्यधिक कमी आ जाती है। महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु व अन्य दक्षिणी राज्यों में मूंगफली की बुवाई नवम्बर से जनवरी तक रबी मौसम में की जाती है।

बीज की मात्रा

मूंगफली की फसल से अधिक पैदावार लेने के लिए गुच्छेदार किस्मों का 100 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। जबकि फैलने वाली किस्मों का 80 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। बीजशुद्ध, स्वच्छ व साफ–सुथरा होना चाहिए बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

बीजोपचार

विभिन्न बीमारियों से बचाव हेतु बीजोपचार अति आवश्यक है। इसके लिए बुवाई से पूर्व बीज को 2.5 ग्राम थीरम या बाविस्टीन से प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। यदि किसानों ने बीज किसी विश्वसनीय संस्था से खरीदा है तो उसे उपचारित करने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि यह बीज पहले से ही उपचारित होता है जैसा कि हम जानते है कि मूंगफली एक दलहनी कुल की फसल है। यह वातावरण

की नाइट्रोजन (78 प्रतिशत) का यौगिकीकरण कर भूमि में स्थापित करने की क्षमता रखती है। इसलिए इस क्षमता को बढ़ाने के लिए बुवाई 10–15 घंटे पहले बीज को राइजोबियम नामक जीवाणु उर्वरक से उपचारित कर लेना चाहिए। एक हैक्टेयर क्षेत्र में बुवाई करने हेतु राइजोबियम जीवाणु के दो पैकेट पर्याप्त होते है। ये पैकेट प्रायः सभी कृषि अनुसंधान संस्थानों व कृषि विश्वविद्यालयों में मुफ्त उपलब्ध है। राइजोबियम उपचार हेतु एक टिन एक चौड़े बर्तन में एक लिटर पानी में 125 ग्राम गुड़ तथा दो ग्राम गोंद को अच्छी तरह उबाल लें। उसके बाद ठंडा होने पर इस घोल में राइजोबियम के दोनों पैकेट अच्छी तरह मिला दें। इस प्रकार बनी लई को बीज के साथ अच्छी तरह से मिला दें। जिससे बीज के चारों और लई की महीन परत चढ जाये। उसके बाद बीज को छाया में सुखा लें। ध्यान रहे कि उपचारित बीज को कभी भी धूप में न सुखाएं। इससे मूंगफली की पैदावार में 15–20 प्रतिशत की बढोतरी की जा सकती है। बीज को सर्वप्रथम कवकनाशी फिर कीटनाशी और सबसे बाद में राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें।

बुवाई की विधि

मूंगफली की बुवाई पंक्तियों में हल के पीछे कूडों में या सीडड्रिल की सहायता से करनी चाहिए। बीज को छिटककर बोने से सबसे अधिक हानि होती है। गुच्छेदार किस्मों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेमी. और पौधे से पौधे की दूरी 10 सेंमी. रखें। फैलने वाली किस्मों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेमी और पौधे से पौधे की दूरी 15 सेमी रखें। प्रति इकाई क्षेत्र वांछित पौध संख्या बनाए रखने व अधिक क्षेत्र में बुवाई के लिए सीड–ड्रिल का प्रयोग करें। बीज की बुवाई 4–6 सेंमी की गहराई पर करने से अंकुरण शीघ्र व अच्छा होता है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

मिट्टी परीक्षण के आधार पर की गई सिफारिशों के अनुसार ही खाद एवं उर्वरकों की मात्रा सुनिश्चित की जानी चाहिए। मूंगफली की अच्छी फसल के लिए 3–10 टन अच्छी तरह सड़ी–गली गोबर की खाद प्रति हैक्टेयर की दर से खेत की तैयारी के समय मिट्टी में मिला देनी चाहिए। सिंचित क्षेत्रों के लिए 20–25 किग्रा. फास्फोरस व 30–35 किग्रा. पोटाश/हे. की दर से प्रयोग करना चाहिए। साधारणतः उत्तरी भारत की मृदाओं में जिंक व सल्फर की कमी पाई जाती है। अतः पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए 15–20 किग्रा. जिंक सल्फेट व 200–400 किग्रा प्रति हैक्टेयर की दर से जिप्सम का प्रयोग बुवाई के समय करें। जिप्सम को पुष्पावस्था के समय पौधों के चारों ओर छिंटक कर भी डाला जा सकता है। मृदा में सल्फर की कमी का मूंगफली में तेल की मात्रा और गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जबकि कैल्शियम की कमी से मूंगफली में दानों का भराव ठीक से नहीं हो पाता है। अतः मूंगफली की फसल में नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश को क्रमशः अमोनियम सल्फेट, सुपर फास्फेट व पौटेशियम सल्फेट के रूप में देना लाभकारी पाया गया है। बरानी या असिंचित क्षेत्रों में 15–20 किग्रा. नाइट्रोजन, 30–40 किग्रा फास्फोरस व 20–25 किग्रा पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

साधारणतया खरीफ मूंगफली की फसल वर्षा पर निर्भर करती है। अतः सिंचाई की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती है। मूंगफली की फसल में चार अवस्थाएं क्रमशः प्रारंभिक वानस्पतिक वृद्धि अवस्था, फूल बनाना, अधिकीलन (पेगिंग) व फली बनने की अवस्था सिंचाई के प्रति अति संवेदनशील है। मूंगफली में दूध बनने की अवस्था पर पानी की कमी का फसल की वृद्धि और पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। खेत में आवश्यकता से अधिक भरे पानी को भी तुरंत बाहर निकाल देना चाहिए। अन्यथा वृद्धि व उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

सहफसली खेती

मूंगफली के साथ अंतः फसलीकरण से किसान 20 से 30 प्रतिशत अधिक उपज ले सकते है। भारत के अधिकांश मूंगफली उत्पादक राज्यों में मूंगफली के

साथ अरहर, कपास, मक्का, ज्वार, बाजरा, तिल आदि महत्वपूर्ण अंतःसस्य पद्धति है। इन फसलों के साथ मूंगफली को पंक्तियों में 4:1 या 3:1 के अनुपात में उगाया जा सकता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में सूखे के कारण मूंगफली की फसल के असफल होने की जोखिम को टालने के लिए भी सहफसली खेती की जाती है। इस पद्यति में भूमि संसाधनों का उचित उपयोग होता है क्योंकि दोनों फसलों की बढोतरी का तरीका अलग–अलग होता है। इस विधि से अनियमित व कम वर्षा वाले क्षेत्रों में फसल के नष्ट होने की जोखिम की प्रतिपूर्ति तो होती ही है। इसके अलावा एकल फसल की तुलना में सहफसली खेती से कुल उत्पादन में भी बढोतरी होती है। साथ ही इसमें संसाधानों का बेहतर ढंग से उपयोग होता है। सहफसली खेती में उत्पादकता बढ़ने के साथ–साथ खरपतवारों, कीटों व बीमारियों का भी कम प्रकोप होता है। इससे न केवल किसानों की आय बढ़ती है बल्कि सौर ऊर्जा, नमी व पोषक तत्वों का भी कुशलतापूर्वक उपयोग होता है। अतः सिंचित व असिंचित दोनों क्षेत्रों में मूंगफली के साथ सहफसली खेती करना मुनाफे का सौदा है।

खरपतवार नियंत्रण

मूंगफली की अच्छी पैदावार लेने के लिए कम से कम दो निराई–गुड़ाई अवश्य करें। पहली और दूसरी निराई क्रमशः बुवाई के 20–25 दिन तथा 40–45 दिन बाद करनी चाहिए। इससे जड़ों की अच्छी बढ़वार व फैलाव होता है। साथ ही भूमि में वायु का संचार भी बढता है। आजकल मजदूरों की कम उपलब्धता और उनकी अधिक मजदूरी के कारण बहुत से शाकनाशी बाजार में उपलब्ध है। रासायनिक विधि से खरपतवारों को आसानी से नियंत्रण किया जा सकता है। इसके लिए फसल की बुवाई के पूर्व फ्लेक्लोरेलिन 1.0 किग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर की दर से 600 लीटर पानी में छिड़काव करके भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। इसके अलावा पेंडीमिथेलीन शाकनाशी की 1.0 किग्रा. मात्रा को 500–600 लिटर पानी में घोलकर बुवाई के बाद परंतु अंकुरण से पहले छिड़कना चाहिए। इससे अधिकतर खरपतवार नष्ट हो जाते है। इसी प्रकार एलोक्लोर की 1.0–1.5 किग्रा/हेक्टेयर की दर से छिड़काव करके भी खरपतवारों का नियंत्रण किया जा सकता है।

कीटों की रोकथाम

मूंगफली की फसल में अनेक प्रकार के कीटों द्वारा नुकसान होता है। जिनमें सफेद लट, विहार की रोमिल झल्ली, मूंगफली का एफिड व दीमक प्रमुख है। सफेद लट की समस्या वाले क्षेत्रों में बुवाई से पूर्व कार्बोफ्यूरान 25 किग्रा./हे. की दर से खेत में डाले। दीमक के प्रकोप को कम करने के लिए क्लोरोपायरीफास नामक दवा की 4.0 लिटर मात्रा को प्रति हेक्टेयर की दर से 800–1000 लिटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। पत्ती काटने वाली सूंडी की रोकथाम के लिए एंडोसल्फान की 1.5–2.0 लिटर दवा को 700–800 लिटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिए।

रोगों की रोकथाम

1. टिक्का रोग

इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम निचली पत्तियों पर नजर आते है। जो बाद में फैलकर संपूर्ण पौधे को ग्रसित कर देते है। पत्तियों पर गहरे धब्बे पड़ जाते है, जो बाद में पीले हरे भूरे गोल चक्तों में बदल जाते है। इन धब्बों की संख्या लगातार बढ़ती जाती है और पत्तियां सूखकर गिरने लगती है। इसकी रोकथाम के लिए डाइथेन एम–45 का 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें।

2. रोजेट

यह विषाणु द्वारा फैलने वाला रोग है। इस रोग से प्रभावित पौधे पीले पड़ जाते है। साथ ही उनकी वृद्धि भी रूक जाती है। यह रोग एफिड़ के माध्यम से फैलता है। अतः इसकी रोकथाम के लिए फसल पर मेटासिस्टॉक्स के 0.2–0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए।

3. कालर और तना गलन

इस रोग से ग्रसित पौधों के तनों पर गोल व हल्के भूरे धब्बे पड़ जाते है। बाद में ये धब्बे मुलायम होकर सड़ने लगते है। परिणामस्वरूप पौधा गिर जाता है और अंततः मर जाता है। इस रोग की रोकथाम के लिए बीज को बुवाई से पूर्व एग्रोसन जी.एन. कवकनाशी की 2.5 ग्राम दवा प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

खुदाई एवं रख–रखाव

मूंगफली की बेहतर पैदावार लेने के लिए कटाई उस समय करें जब अधिकांश पत्तियां पीली पड़कर सूखने लगे। फलियों के छिलके का रंग सुनहरा होने लगे। फलियों में दाने के ऊपर छिलका अधिक चमकदार रंग का हो जाए। कच्ची फलियां अंगुलियों से दबाने पर आसानी से टूट जाती है जबकि पकी फलियां आसानी से नहीं टूटती है। उपर्युक्त लक्षणों के स्पष्ट होने पर फसल की खुदाई कर लेनी चाहिए। अधपकी फसल को काटने पर पैदावार व तेल की मात्रा और उसकी गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है। साथ ही बिलंब से कटाई करने पर फलियां मिट्टी में रह जाने की संभावना बढ़ जाती है। पकी फसल पर वर्षा होने से फलियों में ही बीज के उगने की संभावना रहती है। अतः कटाई समय पर करनी चाहिए। फसल की खुदाई हाथ से पौधों को उखाड़कर या देशी हल चलाकर या कस्सी से करते हैं। कटाई के बाद पौधों को सुखाए तथा बाद में फलियों को अलग करने के बाद फिर से सुखाए ताकि उनमें नमी की मात्रा 9–10 प्रतिशत रह जाये।

उपज

किसान मूंगफली की खेती में उपर्युक्त तकनीकी को अपनाकर 15–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त कर सकते है। बीजों के लिए फलियों को अच्छी तरह सुखाए तथा बीज को फली के अंदर ही रहने देना चाहिए। मूंगफली का भंडारण 70 प्रतिशत आपेक्षित आर्देता व 8 प्रतिशत नमी से कम पर ही करना चाहिए।

ooo

17

औषधीय महत्व के पौधे

डॉ. नवीन कुमार बौहरा

औषधीय महत्व के पौधे प्राचीनकाल से ही मनुष्य के लिए परिचित तथा पूज्य रहे है। प्राचीन चिकित्सा विधियां मुख्यतया वानस्पतिक उत्पादों पर आधारित रहीं है। प्राचीन भारत में औषधीय महत्व के पौधों के उपयोग की प्रथम प्रामाणिक जानकारी ऋग्वेद में है। ऐसा माना जाता है कि ऋग्वेद 3500 से 1800 वर्ष पूर्व प्रकाश में आ चुका था। भारत में उच्च वर्ग की लगभग 15000 जातियों के पौधे उपलब्ध हैं जिनमें लगभग 1500 पौधे औषधीय महत्व के हैं।

व्यापारिक एंव अन्य उपयोग हेतु अंधाधुध दोहन एवं अन्य कारणों से अनेक औषधीय पौधे दुर्लभ एवं संकटग्रस्त पादपों की श्रेणी में आ गए है। इस लेख में कुछ औषधीय पौधों के उपयोगी एवं उनमें पाए जाने वाले रासायनिक गुणों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:–

1. अपामार्ग

वानस्पतिक भाषा में "**एकाइरेथिंस एस्पेरा**' के नाम से एवं साधारण रूप से अपामार्ग लटजीरा आदि नामों से जाना जाता है। यह कुल "**एमरेंथेसी**" का शाकीय पादप है, जिसकी जड़ एवं बीज उपयोगी हैं। इसका उपयोग सारक (Laxative) के रूप में, मूत्रवर्धक के रूप में, ड्रॉप्सी बवासीर, फोड़े–फुंसी में, त्वचा झड़ने, एवं सर्पदंश उपचार में होता है। इसके बीज उल्टी पैदा करते है एवं यह जलभीति (हाइड्रोफोबिया) में उपयोगी है।

2. अकरकरा

वानस्पतिक भाषा में "**एनसाइक्लस पाइरिथ्रम**" के नाम से जाना, जाने वाले इस कम्पोजिटी कुल के शाकीय पादप (बहुवर्षीय शाक) की जड़ औषधीय महत्व की है। इससे सुगंधित तेल एवं "**पेलिटोरिन**" तथा "**पाइरिथ्रिन**" रसायन प्राप्त होते हैं। इसका उपयोग घाव भरने, दांत–दर्द एवं दांत भरने में, टोंसिल रोग (Tonsillitis) में, लकवा होने पर, आंखों में जलन होने पर, उल्टी के दौरे पड़ने पर, गंठिया–रोग के उपचार में, हैजा एवं टाइफाइड बुखार में किया जाता है।

3. अकोल

वानस्पतिक भाषा में इसे "**एलेजिंयम सालविफोलियम**" (Alangium salvifolium) कहते है। यह कुल **एलेजिंपेसी** का वृक्ष–पादप है तथा इसकी जड़ की छाल एवं पत्तियां औषधीय महत्व की है। इससे **एलेंजिन, अकरकंटाइन, एकोलिन** तथा **लेमारकिन** रसायन प्राप्त होते हैं।

अकोल का उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में होता हैं। इसकी जड़ की छाल, तीव्र सारक (Laxitive) के रूप में, आंत्र कृमि (Intestinal Worms) निकालने में, बुखार एवं चर्म रोग में उपयोगी है। इसकी पत्तियों की पुल्टिस, गठिया दर्द निवारण में एवं छाल से प्राप्त ऐल्केलाइड रक्तदाब (Blood Pressure) कम करने में उपयोगी है।

4. बल

वानस्पतिक भाषा में इसे "**साइडा कोर्डीफोलिया**" कहते हैं। सामान्य भाषा में इसे 'बला' या कंघी आदि नामों से जाना जाता है। यह कुल "**मालवेसी**" का पादप है तथा इसका संपूर्ण पादप भाग औषधीय महत्व का है। इससे एक ऐल्केलोइड प्राप्त होता है। जो संभवतः एफिड्रीन के समान गुणों वाला होता है।

इसकी जड़ का रस बुखार कम करने में, जड़ की छाल चेहरे के लकवे, साइटिका, शीघ्र पतन एवं ल्यूकोरिया रोग में उपयोगी है। पौधे का रस शुक्राणु (Spermatorrhoea) में, जड़ का रस घाव भरने में उपयोगी है। इसके बीज का प्रयोग काम–शक्ति बढ़ाने, गोनोरोहिया एवं कोलिक के उपचार में किया जाता है।

5. हिंगोटा

इसे सामान्यतः हिंगोटा, हिंगन आदि नामों से जाना जाता है। वानस्पतिक भाषा में इसे **"बोलेनाइटिस एजिप्टियाका"** कहा जाता है। यह **"सिमारूवेसी"** का वृक्ष–पादप है तथा इसकी छाल, फल एवं बीज औषधीय रूप में उपयोगी हैं। इससे सक्रिय तत्व **सेपोरिन** प्राप्त होता है।

इसकी छाल, कच्चा फल तथा पत्तियों को सारक (Laxative) के रूप में आंत्र कृमि नाशक के रूप में एवं मछलियों के लिए विष के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसका बीज बलगम निष्कासन एवं पादप रस का प्रयोग सर्पदंश में उपयोगी है।

6. नीम

"अजाडिऐक्टा इंडिका" नामक वानस्पतिक नाम वाले इस वृक्ष–पादप की छाल, पत्तियां, गोंद, फूल एवं फल सभी उपयोगी हैं। यह **"मेलियेसी"** का सदस्य है। इसमें **निम्बिन, निम्बिनिन, निम्बिडिन** एवं **बकायनिन** नामक सक्रिय रासायनिक तत्व पाए जाते हैं।

इसकी छाल का उपयोग घाव भरने, छाल एवं कच्चे फल का उपयोग, अव्यवस्थित पोषण एवं शारीरिक तंत्रों की कार्यप्रणाली के सुधार के लिए किया जाता है। इसकी पत्तियां फोड़े, छालों, खुजली एवं कीटाणुनाशक के रूप में तथा सर्पदंश एवं बिच्छु डंक में उपयोगी है। इसकी गोंद का उपयोग पोषक द्रव्य एवं त्वचा तथा श्लेष्म झिल्ली को शांत करने के लिए होता है। इसके सूखे फूल पोषक द्रव्य एवं पाचन तथा भूख बढ़ाने में उपयोगी हैं। इसके फल तीव्र साख्य के रूप में त्वचा शांत करने एवं आंत्र कृमि निकालने में उपयोगी हैं।

7. पत्थरचट्टा

इसे वानस्पतिक भाषा में "कलंचो पिन्नाटा" कहते है, यह **'क्रसूलेसी'** कुल का पादप है। सामान्य भाषा में इसे **पत्थरचट्टा** या **जख्महयात्** के नाम से भी जाना जाता है। इस शाकीय पादप की पत्तियां औषधीय महत्व की है। इसकी पत्तियों में **मेलिक, आइसोसिट्रिक** एवं **सिट्रिक अम्ल** नामक सक्रिय रसायन पाए जाते हैं। पत्थरचट्टा की हल्की गर्म की हुई पत्तियों को घाव, फोड़े–फुसिंयों एवं कीड़े–मकोड़े के काटने पर बांधा जाता है।

8. हिना / मेंहदी

इसका वानस्पतिक नाम **"लासेंनिया इनरमिस"** है तथा यह **लेथइरेसी** कुल का सदस्य है। इस क्षुप पादप की छाल, पत्तियां, तेल एवं इत्र उपयोगी होता है। इसमें सक्रिय रसायन **ग्लूकोसाइड** एवं **हिन्नोटेनिक अम्ल** पाया जाता है।

इसकी छाल का उपयेाग पीलिया, प्लीहा, वृद्धि, त्वचा विकार, कोढ आदि में होता है। इसकी पत्तियां शुक्राणु अल्पता (Spermatorrhoea) में तथा बाहरी तौर पर सिर दर्द एवं पैरों की जलन में रगड़ कर लगाई जाती है। इसके तेल एवं इत्र का उपयोग शरीर को ठंडक प्रदान करने में किया जाता है। त्यौहारों में हाथों पर मेंहदी रचाना शकुन भी माना जाता है।

9. उतरान

इसे उतरान, सदोवनी के स्थानीय नाम से एवं वानस्पतिक भाषा में इसे **"परगुलेरिया एक्सटेंसा"** कहते है। यह "एस्कलीपिडेसी" कुल की आरोही झुप है तथा इसकी पत्तिया, फूल एवं जड़ की छाल उपयोगी है। इसमें पाए जाने वाले ग्लूकोसाइड रसायन उपयोगी हैं।

इसकी पत्तियों का रस कफ एवं बलगम निष्कासन में उपयोगी है। यह उल्टी पैदा करने, शिशुओं के अतिसार में, दमा, गठिया, सर्पदंश आदि में उपयोगी है। इसकी पत्तियों की पुल्टिस, गुखरु (Carbuncle) में उपयोगी है। इसकी जड़ की छाल गाय के दूध के साथ स्नेहक का कार्य करती है। इसकी पत्तियां एवं फूल खाने योग्य भी है।

10. चामघास

इसका वानस्पतिक नाम **"कोरकोरस डिप्रेंसस"** है तथा यह **"टिलीयेसी"** का सदस्य है। इसे सामान्य भाषा में चामघास या बफूली आदि भी कहते है। इस शाकीय पादप की पत्तियों एवं बीजों सहित संपूर्ण पादप उपयोगी है। पत्तियों का उपयोग मलहम के रूप में, पौधे एवं बीज का उपयोग टॉनिक के रूप में एवं ज्वर में शीतलता प्रदान करने के अतिरिक्त "गोनोरोहिया" रोग में भी होता है।

11. लाजवंती

इसे लाजवंती, लज्जालु आदि नामों से जाना जाता हे। वानस्पतिक भाषा में इसे **"माइमोसा पुडिका"** कहते है तथा यह शाकीय पादप लैग्युमिनेसी कुल का सदस्य है। इसकी जड़, पत्तियां एवं तना उपयोगी हैं तथा इसमें ऐल्केलोइड **"मिमोसिन"** पाया जाता है। इसका प्रयोग बवासीर, बिच्छु के दंश के उपचार में एवं अंड वृद्धि हेतु किया जाता है।

12. महुआ

वानस्पतिक भाषा में इसे **"मधुका इड़िका'** कहते है। यह वृक्ष पादप "सेपोटेसी" कुल का सदस्य है। इसके फूल एवं छाल उपयोगी है। महुआ में **"ग्लूकोसाइडिक सेपोनिन"** नामक रसायन पाया जाता है। फूलों को आसवित कर स्पिरिट बनाई जाती है जो त्वचा के घाव भरने में उपयोगी है। यह शीतलता प्रदान करने, पोषक द्रव्य के रूप में, भूख लगाने हेतु टॉनिक के रूप में तथा बवासीर, कफ आदि में उपयोगी है। इसकी छाल घाव भरने, टॉनिक के रूप में तथा मछलियों के विष के रूप में भी उपयोगी है। महुआ से आदिवासी क्षेत्रों में देशी शराब भी बनाई जाती है।

13. भांगरी

सामान्यतः भांगरी, उत्तांजन के नाम से जाने जाने वाले इस क्षुप–पादप का वानस्पतिक नाम **"ब्लीफफोरिस इडुलिस"** तथा यह **"एकेथिंऐसी"** कुल का पादप है। इसके बीज उपयोगी हैं। इसमें **एलेंटोइन, बिटर ग्लूकोसाइड, ब्लीफेरिन, केटिचोल, टेनिन, सेपोनिन** एवं **ग्लूकोस** आदि रसायन पाए जाते हैं। इस पादप का उपयोग जलन शांत करने में, मूत्रवर्धन में, काम शक्ति में वृद्धि के लिए, बलगम निष्कासन आदि में किया जाता है।

14. बड़ा गोखरू

इसे वानस्पतिक भाषा में **"पिडोलियम म्यरेक्स"** कहते है तथा यह **"पिडेलियेसी"** का सदस्य है। इस शाक–पादप के फल, पत्तियां एवं तना उपयोगी हैं। पत्तियों का उपयोग शाक की तरह किया जाता है जबकि फल का काढा मूत्र रूकावट, शुक्राणु अल्पता, स्वप्नदोष, बांझपन निवारण आदि में किया जाता है। तने एवं पत्तियों का निचोड़ गोनोरोहिया रोग एवं दर्द युक्त मूत्र निष्कासन के उपचार में किया जाता है जबकि फलों का रस आंसू के बहाव को बढ़ाने में सहायक है।

15. बड

इसे सामान्यतः बरगद या बड़ के नाम से जाना जाता है। वृक्ष–पादप का वानस्पति नाम **"फाइकस बैगालेंसिस"** है तथा यह "मोरेसी" कुल का सदस्य है। इसका लेटेक्स, छाल बीज, पत्तियां एवं जड़ सभी किसी न किसी रूप में उपयोगी हैं। इसके लेटेक्स का उपयोग गठिया कमर दर्द आदि में उपयोगी हैं। छाल का रस टॉनिक के रूप में, पेचिस, दस्त मधुमेह एवं घाव भरने में सहायक है। इसके बीज शीतलता प्रदान करते है एवं टॉनिक की तरह उपयोगी हैं। पत्तियों की पुल्टिस फोड़े–फुंसी एवं मूसला जड़े गोनोरोहिया रोग में उपयोगी है।

16. डाब

वानस्पतिक भाषा में इसे **"डेस्मोस्टेकिया बाइपिनाटा"** के नाम से जाना जाता है तथा **"पोएसी"** कुल की बहुवर्षीय लंबी घास कहते है। इसे साधारण भाषा में डाब, दुर्वा, कुशा आदि कहते है। इसकी घास का झुरमुठ उपयोगी है। इसका उपयोग उत्तेजक, मूत्रवर्धक के लिए एवं अधिक मासिक स्राव तथा पेचिश रोग में भी किया जाता है।

17. धमासा

इस शाक–पादक को सामान्य भाषा में धमासा,

धमाना आदि नाम से जाना जाता है। जबकि वानस्पतिक भाषा में इसे **"फेगोनिया क्रिट्रिका"** कहते है। यह **"जाइगोफिलसी"** कुल का पादप है, जिसका संपूर्ण पादप उपयोगी है। इस पौधे का उपयोग घाव भरने, बुखार कम करने, छोटी चेचक, जलशोफ (Dropsy) में, अल्पकालीन मानसिक विक्षोम में (Mental disturbance) एवं विष के प्रभाव होने पर किया जाता है। इसकी पत्तिया एवं टहनियां शीतलता प्रदान करती है।

18. गठीरा

वानस्पतिक भाषा में इसे **"जैथियम स्टूमेरियम"** तथा साधारण भाषा में गठीरा, बनोकरा, आधाशीशी आदि नामों से जाना जाता है। यह शाक पादप **"कम्पोजिटी"** कुल का सदस्य है तथा इसका संपूर्ण पादप उपयोगी है। यह पादप स्वेदन की प्रक्रिया को बढ़ाता है। यह तंत्रिका तंत्र की उत्तेजना को कम करता है तथा मलेरिया में भी उपयोगी है। इसके फल शीतलता प्रदान करते हैं तथा त्वचा एवं श्लेष्मा झिल्ली को शांत करते है। इसका उपयोग छोटी चेचक में भी किया जाता है। इसका हर भाग किसी न किसी रूप में उपयोगी है।

19. जमालगोटा

इसे वानस्पतिक भाषा में **"जेट्रोफा गोसिपिफोलिया"** कहते हैं। यह **"यूफोरवियेसी"** कुल का सदस्य है। इसे सामान्य भाषा में जमालगोटा या बहरेंड़ा कहते है। इस क्षुप पादप (Shrub) की छाल, पत्तियां एवं बीज उपयोगी है। इसकी पत्तियां फोड़े, गुखरू, दाद, खुजली एवं स्नेहक (Lubricant) के रूप में उपयोगी है। छाल का काढा मासिक स्राव बढाता है। इसके बीज पागलपन एवं उल्टी पैदा करते है एवं स्नेहक के रूप में उपयोगी है।

20. जंगली प्याज

सामान्य भाषा में इसे जंगली कांदा, वन–प्याजी या जंगली प्याज कहते है। वानस्पतिक भाषा में इसे **"अरजीनिया इंड़िका"** कहते हैं। यह शाक पादप **"लिलियेसी"** कुल का सदस्य हैं तथा इसका कंद तथा पत्तियां उपयोगी हैं। इसमें **ग्लाइकोसाइड सिलारेन ए एवं बी** (Scillaren A & B) पाया जाता है। इसका कंद हृदय उत्तेजक के रूप में, मूत्रवर्धक एवं कफ तथा बलगम के निष्कासन में उपयोगी है। इसकी पत्तियां श्वास एवं दमा रोग में उपयोगी है।

21. काली मूसली

इसे काली मूसली, मूसलीवर या तलूरा आदि नामों से जाना जाता है। वानस्पतिक भाषा में इसे **"करक्यलिगो ओरकिओइडिस"** कहते है। यह बहुवर्षीय पादप **"एमरेलिडेसी"** पादप सदस्य है तथा इसका राइजोम गोनोरोहिया, खुजली एवं त्वचा संबंधी रोगों में, त्वचा एवं श्लेष्मा झिल्ली को शांत करने, द्रव्य टॉनिक के रूप में, मूत्र स्त्रवण एवं मूत्रवर्धन हेतु तथा कामशक्ति वृदधि में उपयोगी है।

22. केतकी

वानस्पतिक भाषा में इसे **"पेंडेनस ओडोराटिस्सिमस"** कहते है। सामान्य भाषा में इसे केतकी केवडा, केऊरा आदि नामों से पुकारा जाता है। यह **"पेंडेनेसी"** कुल का सदस्य है। इस क्षुप पादप की पत्तियां उपयोगी है जिससे सुगंधित तेल प्राप्त होता है।

इसकी पत्तियां कोढ, छोटी चेचक, सिफिलिस, स्केबीस तथा त्वचा के सफेद दाग में उपयोगी है। तेल उत्तेजक, कीटाणुनाशक, मांसमेशियों को उत्तेजित करने वाला, सिरदर्द, गंठिया एवं खुशबू के लिए प्रयोग किया जाता है।

23. खींप

इसे वानस्पतिक भाषा में **"लेप्टाडीनिया पायरोटोक्निका"** कहते है। यह **"एस्कलीपीडियेसी"** कुल का सदस्य है। इसे स्थानीय भाषा मे खींप, खीपडों आदि नामों से जाना जाता है। इस क्षुप पादप का भूमि के ऊपर का संपूर्ण भाग उपयोगी है। इस पौधे का उपयोग दर्में की शिकायत में किया जाता है। पौधे का रस घावों को भरने में प्रयुक्त किया जाता है।

24. कट करंज

करंजू या कट–करंज के स्थानीय नाम से जाना जाने वाले इस पादप का वानस्पतिक नाम **"सीजलपीनिया क्रिस्टा"** है। यह क्षुप–पादप **"सीजलपीनियेसी"** का सदस्य है तथा इसका बीज, पत्तियां एवं छाल उपयोगी हैं। इसमें फाइटोस्टेराइनिन (Phytosterinin), बोंडूसिन (Bounducin), सेपोनिन (Saponin) तथा फाइटोस्टिराल (Phytosterols) नामक रसायन पाए जाते हैं।

इसका बीज बुखार कम करने, टॉनिक के रूप में, दमा में एवं सर्पदंश में उपयोगी है। इसकी नर्म पत्तियां लीवर की समस्या में उपयोगी है। पत्तियां एवं बीज बाहरी तौर पर जलन एवं सूजन कम करते हैं। इसकी पत्तियां एवं छाल मासिक स्राव बढाने, बुखार कम करने एवं आंत्र कृमि निष्कासन में लाभदायक है। इसके बीज का तेल त्वचा की जलन शांत करने एवं कान से होने वाले स्राव को रोकने में उपयोगी है।

25. कंकेडा

"कुकुरबिटेसी" कुल के इस पादप को वानस्पतिक भाषा में **"मेमोरडिका डायोका"** तथा स्थानीय भाषा में, कंकेडा, गोलकंदरा, जंगली करेला, मुरेला आदि नामों से जाना जाता है। इस आरोही अथवा फैलने वाली क्षुप की जड़ एवं फल उपयोगी हैं।

इसकी भूनी हुई जड़ का उपयोग बवासीर में, रक्त स्राव रोकने में मूत्राशय की शिकायत, उच्च ज्वार, अल्पकालीन मानसिक विक्षोप, सर्पदंश, बिच्छु के डंक लगने पर किया जाता है। इसका रस कीटाणुनाशक एवं फल–शाक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

26. सुगंध रोहिशा (Cymbopogon citratus)

इसे सुगंध रोहिशा, अग्याघास, गंधत्रणा आदि नामों से जाना जाता है। इसे वानस्पतिक भाषा में **"सिम्बोपोगोन स्ट्रिटस"** कहते है। यह बहुवर्षीय घास **"पोएसी"** कुल की सदस्य है तथा इसकी पत्तियां उपयोगी है। इसमें **"सिट्राल"** नामक रसायन पाया जाता है।

इसकी पत्तियों का निचोड़ उत्तेजक के रूप में, श्लेष्मा झिल्ली की जलन के साथ बहती नाक की रोकथाम में उपयोगी है। इसका तेल वायु विकार कम करने, हैजा रोग में, सुगंध के रूप में, सौंदर्य प्रसाधनों में, स्वाद बढ़ाने एवं चाय के प्रतिस्थापक के रूप में उपयोगी है।

27. मरुवा

इसे वानस्पतिक भाषा में **"मेजोराना होरटेंसिस"** कहते है। यह शाक पादक **"लेबिएटी"** कुल का सदस्य है तथा इसका संपूर्ण पादप उपयोगी है। इसका उपयोग वायुविकार, कफ एवं बलगम के निष्कासन में एवं कोलिक में होता है। सुगंधित तेल का उपयोग तीव्र अतिसार, मोच, त्वचा छिलने, अकड़े हुए एवं लकवा ग्रस्त जोड़ों के उपचार में, दांत दर्द एवं इत्र तथा साबुन निर्माण में किया जाता है।

28. पिनडारा

इसे सुखदर्शन, पिनडारा आदि स्थानीय नामों से जाना जाता है। इस शाक पादप का वानस्पतिक नाम **"क्रीनम–एसियाटिकम"** है तथा यह **एमरेलिडेसी** कुल का सदस्य है। इसका कंद, जड़, बीज एवं पत्तियां उपयोगी है। इसमें **लाइकोरिन** एवं **क्राइनामिन** सक्रिय रसायन पाए जाते है।

इसके कंद का उपयोग पोषक द्रव्य की तरह किया जाता है। यह सारक है तथा कफ तथा बलगम निष्कासन, उल्टी रोकने, धीमे एवं दर्दयुक्त मूत्रस्राव में उपयोगी है इसकी ताजी जड़ उल्टी पैदा करती है एवं स्वेद बढ़ाती है। इसका बीज सारक के रूप में, मासिक स्राव वृदधि, मूत्र वृदधि एवं पोषक द्रव्य के रूप में उपयोगी है। इसकी पत्तियां त्वचा रोग एवं जलन कम करने में उपयोगी हैं।

29. अर्जुन

इस वृक्ष पादप का नाम वानस्पतिक भाषा में "टरमिनेलिया अर्जुना" है तथा यह कोम्ब्रीटेसी का सदस्य है। इसकी छाल, फल तथा पत्तिया उपयोगी है।

इसकी छाल का उपयोग हृदय रोग में, पोषक द्रव्य की तरह, घाव भरने, बुखार कम करने, पित्त विकार, छालों एवं विष के तोड़ के रूप में किया जाता है। इसका फल पोषक द्रव्य के रूप में एवं पत्तियों का

3563 HRD/15—10A

3563 HRD/15—10B

रस कान की पीड़ा के उपचार में किया जाता है।

30. मोलसरी

"माइमोसोप्स इलैंजी" नामक वानस्पतिक नाम वाले **"सेपोटेसी"** कुल के इस वृक्ष को स्थानीय भाषा में मोलसरी, बकुला, बकुल आदि कहते है। इसकी छाल, पत्तियां एवं फल उपयोगी हैं।

इसकी छाल का उपयोग त्वचा का घाव भरने, पोषक द्रव्य की तरह एवं बुखार में किया जाता है। इसकी पत्तियां सर्पदश में उपयोगी है एवं पके फल के गूदे का उपयोग त्वचा सिकोड कर घाव भरने एवं पेचिश की बिगडी अवस्था में किया जाता है।

31. हरड

"वानस्पतिक भाषा में इसे **"टरमिनेलिया चिबुला"** कहते है। यह **"क्रांबीटेसी"** कुल का वृक्ष–पादप है तथा स्थानीय भाषा में इसे हरीर या हरड़ कहा जाता है। इसके फल एवं छाल उपयोगी हैं।

इसके फलों का उपयोग घाव भरने के रूप में, अव्यवस्थित पोषण एवं शारीरिक तंत्र की कार्य प्रणाली के सुधार के लिए, नासूर एवं घाव में, छिद्र युक्त दांतों के उपचार में, मसूड़ों में छाले व रक्तस्राव में किया जाता है। छाल का उपयोग मूत्रवर्धन एवं मूत्रस्राव तथा हृदय के लिए पोषक द्रव्य की भांति किया जाता है।

32. इमली

अम्ली, इमली आदि नामों से जाना जाने वाले इस वृक्ष पादप का वानस्पतिक नाम **"टेमोरिनडस इंडिका"** है। यह **"सीजलपीनियेसी"** कुल का पादप है जिसके फल उपयोगी हैं। इसमें ऑक्जेलिक अम्ल एवं टारटोरिक अम्ल पाए जाते हैं।

इसके फल ताजगी प्रदान करते हैं, वायुविकार मिटाते हैं। यह पाचक, सारक एवं कुपित पित्त से संबंधित रोगों में उपयोगी है।

33. कदम्ब

इसे वानस्पतिक भाषा में **"मित्रागाइना पारबिफोलिया"** कहते है। यह वृक्ष **"रूबियेसी"** कुल का सदस्य है जिसकी छाल एवं जड़ उपयोगी हैं। इसकी छाल एवं जड़, बुखार एवं मरोड़ में उपयोगी है। इसकी छाल को घिस कर मांसपेशियां के दर्द में उपयोग किया जाता है।

34. मीठा नीम

इसे गंधेला, मीठा नीम, कढ़ी नीम आदि नामों से जाना जाता है। वानस्पतिक भाषा में इस वृक्ष पादप का नाम **"मुरायां कोइनिगी"** है तथा यह **"रूटेसी"** कुल का सदस्य है। इसकी पत्तियां, छाल एवं जड़ उपयोगी हैं। इस पौधे का उपयोग पोषक द्रव्य पाचन एवं भूख बढ़ाने के लिए किया जाता है। इसकी पत्तियां पेचिश, त्वचा छिलने पर, बुखार कम करने एवं सर्पदंश में उपयोगी हैं। इसकी छाल एवं जड़ त्वचा छिलने पर एवं जहरीले जानवर के काटने पर उपयोगी है।

35. रक्त चंदन

इसे **लालू चंदन** भी कहते है। इस वृक्ष पादप का वानस्पतिक नाम **"टेरोकारपस सेंटालेनियस"** है तथा यह **"पेपिलियोनेसी"** कुल का सदस्य है जिसकी लकड़ी उपयोगी होती है।

इसकी लकड़ी का उपयोग घाव भरने, पोषक द्रव्य के रूप में, जलन, सिरदर्द, चर्मरोग, बुखार, व्रण, दृष्टि सुधारने एवं बिच्छु के डंक में किया जाता है।

36. बलराज

इसे बला, बलराज, बरियारा, खरेटा आदि नामों से जाना जाता है। इस क्षुप पादप का वानस्पतिक नाम **"साइडा एक्यूटा"** है तथा यह **'मालवेसी'** कुल का सदस्य है। इसकी जड़ तथा पत्तियां उपयोगी हैं।

इसकी जड़ का उपयोग घाव भरने में, तंत्रिका तंत्र एवं मूत्राशय संबंधित रोग में, रक्त एवं पित्त की समस्या, बुखार कम करने, भूख एवं पाचन बढ़ाने एवं काम शक्ति बढ़ाने में किया जाता है। यह शीलत एवं पोषक है। इसकी पत्तियों का उपयोग गठिया रोग में भी किया जाता है।

37. भूमि–आंवला

इसे जर आंवला, भूमि आंवला, भुई आंवला आदि नामों से जाना जाता है। इस शाकीय पादप का वानस्पतिक नाम **"फाइलेंथस निररी"** है। भूमि आंवला का संपूर्ण पादप उपयोगी है तथा इसमें फाइलेंथिन,

हाइपोलेंथिन नामक रसायन पाए जाते हैं।

यह पादप मूत्रस्राव बढ़ाता है तथा गोनोरोहिया रोग, मूत्राशय संबंधित रोगों एवं पेचिश आदि में उपयोगी है। इसकी ताजी जड़ पीलिया में, पत्तियां पाचन एवं भूख बढाने एवं इसका दूधिया रस घाव भरने में उपयोगी है।

38. चिरमी (लाल)

इसे **चिरमी** (लाल), गुमनी, रत्ती आदि नामों से जाना जाता है। इस आरोही क्षुप का वानस्पतिक नाम **"एब्रस प्रिकटोरियस"** है तथा यह **"पेपिलियोनेसी"** कुल का सदस्य है। इसके बीज एवं जड़ उपयोगी हैं तथा इसमें **"एब्रिन"** **"ग्लूकोसाइड"** रसायन पाए जाते हैं और इसके बीज तीव्र सारक, उल्टी पैदा करने, पोषक द्रव्य की तरह काम क्षमता वृद्धि, तंत्रिकाओं संबंधी समस्या में एवं गर्भपात में सहायक हैं। इसकी जड़ भी उल्टी पैदा करती है।

39. चिरमी (काली)

इसे भी चिरमी (काली), गुमनी, रती आदि नामों से जाना जाता है तथा इसे वानस्पतिक भाषा में **"एब्रस प्रिकेटोरियस"** काली कहते है। इस आरोही क्षुप का बीज एवं जड़ उपयोगी है तथा इसमें भी **"एब्रिन"** तथा **"ग्लूकोसाइड"** रसायन पाए जाते हैं। इसके बीज तीव्र सारक, उल्टी पैदा करने वाले, पोषक द्रव्य की तरह प्रयोग होने वाले, काम क्षमता में वृद्धि करने वाले और, तंत्रिकाओं संबंधी समस्या एवं गर्भपात में सहायक हैं। इसकी जड़ भी उल्टी पैदा करती है।

40. चिरमी (सफेद)

इसका स्थानीय नाम चिरमी (सफेद), गुमची, रत्ती एवं वानस्पतिक नाम **"एब्रस प्रिकटोरियस"** (सफेद) है। यह आरोही क्षुप **"पेपिलियोनेसी"** कुल की सदस्य है तथा इसके बीज एवं जड़ उपयोगी हैं। इसमें **एब्रिन** व **ग्लूकोसाइड** पाए जाते हैं। इसके बीज तीव्र सारक, उल्टी पैदा करने वाले, पोषक द्रव्य के रूप में, काम क्षमता बढ़ाने, तांत्रिकाओं संबंधी समस्या एवं गर्भपात में सहायक है। इसी प्रकार इसकी जड़ उल्टी पैदा करती है।

41. सफेद मूसली

सफेद मूसली को वानस्पतिक भाषा में **"क्लोरोफाइटम बोरिविलिएनम"** कहते है। यह शाक **"लिलियेसी"** कुल का सदस्य है जिसके कंद औषधीय महत्व के हैं।

इसके कंद का उपयोग शारीरिक शिथिलता दूर करने, दुग्ध स्राव एवं मात्रा बढ़ाने (स्त्रियों में), प्रसवोपरांत होने वाली शिथिलता दूर करने, मधुमेह में एवं काम शक्ति बढ़ाने के लिए किया जाता है।

42. मालकांगनी

मालकांगनी को **"सिलास्ट्रस पेनिकुलेटस"** नामक वानस्पतिक नाम से पुकारा जाता है। यह आरोही झाड़ी–पादप **सिलास्ट्रेसी** कुल का सदस्य है जिसकी छाल एवं बीज उपयोगी है। इसमें ग्लूकोसाइड, सिलास्ट्रीन एवं पेनिकुलेटिन नामक रसायन पाए जाते हैं।

इसकी छाल का उपयोग गर्भपात के लिए होता है। इसके बीज सारक उल्टी पैदा करने, उत्तेजक के रूप में, कामशक्ति बढाने हेतु, गठिया, कोढ, ज्वर एवं लकवे में उपयोगी है। इसके बीज का तेल उत्तेजक एवं बेरी–बेरी रोग में उपयोगी है।

43. पोई

इसे स्थानीय भाषा में पोई, लालवाचलु, बसेला, अल्वा आदि नामों से एवं वानस्पतिक भाषा में **"बसेला अल्वा"** के नाम से जाना जाता है। यह आरोही मांसल क्षुप **"बसेलेसी"** कुल की सदस्य है तथा इसकी पत्तियां औषधीय महत्व की है।

इसकी पत्तियां त्वचा एवं श्लेष्म झिल्ली को शांत करती हैं। यह मूत्रवर्धन एवं मूत्र निष्कासन तथा गोनोरोहिया रोग में लाभकारी है। इसकी पत्तियों का रस कब्ज दूर करता है। इसकी नर्म शाखाएं एवं पत्तियां शाक के रूप में उपयोगी हैं।

44. पाडल

इसे पारल, पाडल के स्थानीय नामों से एवं **"स्टीरियोस्परमम सुवियोलेंस"** के वानस्पति नामों से जाना जाता है। यह वृक्ष–पादप **"बिगनोनियेसी"**

कुल का सदस्य है तथा इसकी जड़ की छाल एवं पुष्प औषधीय महत्व के हैं। इसकी जड़ की छाल, शीतलता प्रदान करती है। इसे टॉनिक की तरह, मूत्रवर्धन एवं मूत्रस्राव बढाने में भी प्रयुक्त किया जाता है। यह दशमूल औषधियों में भी प्रयुक्त होता है। इसके फुलों का उपयोग शहद के साथ हिचकी आने पर किया जाता है तथा यह कामशक्ति भी बढ़ाता है।

46. पुर्ननवा

इसे सांटा, सांठी, पुर्ननवा आदि नामों से स्थानीय भाषा में एवं **"बोहराविया डिफ्यूजा"** के वानस्पतिक नाम से जाना जाता है। इस शाक–पादप का संपूर्ण पादप भाग उपयोगी है तथा यह **निकेटेंजिरेसी** कुल का सदस्य है। इसमें सक्रिय तत्व **"पुर्ननविन"** होता है।

इसकी जड़ का उपयोग मूत्रवर्धन में, स्नेहक की तरह कफ एवं बलगम निष्कासन, दमा, भूख एवं पाचन में सुधार हेतु, जलोदर, अरक्तता, पीलिया, मूत्र रूकावट, आंतों की जलन एवं सर्पविष के तोड़/उपचार में होता है।

47. सालममिश्री

इसे स्थानीय भाषा में सालपमिश्री, सालममिश्री आदि नामों से जाना जाता है। वानस्पतिक भाषा में इसे **"ओरकिस लेक्सीफलोरा"** कहते हैं, यह **"ओरकिडेसी"** कुल का सदस्य है। इस शाक–पादप की मांसल जड़े उपयोगी है। इसकी मांसल जड़ पोषक होती है। इसका उपयोग अतिसार, कफ एवं बलगम निष्कासन एवं घाव भरने के लिए किया जाता है।

49. सिंदूरी

इसे वानस्पतिक भाषा में **"बिस्सा ओरिलाना"** तथा स्थानीय भाषा में सिंदूरी लटकन आदि नामों से जाना जाता है। यह क्षुप पादप **"बिक्सेसी"** का सदस्य है तथा इसका फल, जड़ की छाल, बीज एवं पत्तियां उपयोगी हैं। इसका फल सारक का कार्य करता है एवं घाव भरने में उपयोगी है। जड़ की छाल, बुखार कम करने में सहायक है। इसके बीज घाव भरने, बुखार कम करने एवं गोनोरोहिया में उपयोगी है। इसकी पत्तियां पीलिया, सर्पदंश में उपयोगी हैं। इस पौधे से रंजक तत्व प्राप्त किए जाते हैं जो दुग्ध एवं खादय उद्योग में काम आते हैं।

50. शहतूत

शहतूत, तूत, तूल आदि नामों से जाना जाता है। इस वृक्ष–पादप का वानस्पतिक नाम **"मोरस अल्बा"** है तथा यह "मोरेसी" कुल का सदस्य है। इसके फल एवं छाल उपयोगी हैं। इसके फल बुखार में ताजगी प्रदान करते है। इनका उपयोग गले के छालों, विकारयुक्त पाचन–तंत्र एवं मानसिक अवसाद की स्थिति में किया जाता है। इसकी छाल एक तीव्र सारक एवं आंत्र–कृमि नाशक के रूप में प्रयोग की जाती है।

51. सत्यानाशी

इसे स्थानीय भाषा में सत्यानाषी, कटेली, शियालकांटा, कंदियारी आदि नामों से जाना जाता है। इसे वानस्पतिक भाषा में **"आर्जीमोन मैक्सिकाना"** कहते हैं तथा यह "पेपावरेसी" का सदस्य है। इस शाक–पादक के जड़ एवं बीज उपयोगी हैं। इसमें **बारबेरिन एवं प्रोटोपाइन** नामक रसायन पाए जाते हैं।

इसकी जड़ का उपयोग अव्यवस्थित पोषण एवं शारीरिक तंत्रों की कार्यप्रणाली में सुधार के लिए एवं त्वचा–रोगों के लिए किया जाता है। इसके बीज सारक, उल्टी पैदा करने, कफ एवं बलगम निष्कासन, त्वचा एवं श्लेष्मा झिल्ली को शांत करने एवं सर्प विष के तोड के रूप में उपयोग होते हैं। पौधे से प्राप्त होने वाला पीला द्रव्य जलशाक एवं पीलिया में उपयोगी है। तेल सारक का कार्य करता है।

52. सनिया

इसे सनिया, झामो आदि स्थानीय नामों से जाना जाता है और इसे वानस्पतिक भाषा में **"कोटोलेरिया बुरहिया"** कहते हैं। यह क्षुप–पादप **"पेपिलियोनेसी"** कुल का सदस्य है जिसकी पत्तियां एवं शाखाएं शीतलता प्रदान करने वाली औषधि एवं चारे के रूप में उपयोगी हैं। तने से प्राप्त रेशा, रस्सी बनाने एवं बांधने में भी प्रयुक्त किया जाता है।

53. तीखुर

इसे वानस्पतिक भाषा में **"करक्यूमा एंग्युस्टिफोलिया"** कहते है तथा स्थानीय भाषा में तीखुर, तिकोरा कहते हैं। यह क्षुप–पादप **"जिजिबरेसी"** कुल का सदस्य है जिसका कंदमूल भाग उपयोगी है।

इसका कंदमूल पोषक है एवं असली आरारोट के प्रतिस्थापक के रूप में उपयोग किया जाता है एवं त्वचा तथा श्लेष्म झिल्ली को शांत करता है।

54. ऊंटकांटा

इसे स्थानीय भाषा में ऊंटकांटा, गोकरू आदि नामों से जाना जाता है और इसे वानस्पतिक भाषा में **"इकाहनोप्स इकाईनेटस"** कहते है। यह शाक–पादप **"कंपोजिटी"** का सदस्य है जिसका संपूर्ण पादप उपयोगी है।

इस पौधे का उपयोग अव्यवस्थित पोषण एवं शारीरिक तंत्रों की कार्य प्रणाली के सुधार के लिए, मूत्रवर्धन एवं निष्कासन, तंत्रिकाओं के पोषक द्रव्य के रूप में, दिमागी परेशानियो में, विकारयुक्त पाचन तंत्र, आंखों की जलन के लिए किया जाता है। पिसी हुई जड़ को पशु के घाव पर लगाने से पिस्सू मर जाते है और बालों की जुऐं समाप्त हो जाती है।

ooo

18

प्लास्टिक एवं पर्यावरण

डॉ. ए. के. चतुर्वेदी

प्लास्टिक शब्द लेटिन शब्द के 'प्लास्टीकस' तथा ग्रीक भाषा के शब्द 'प्लास्टीकोस' से लिया गया है। इनका शाब्दिक अर्थ मोड़ने वाला है। आज प्लास्टिक हमारे जीवन का महत्वपूर्ण भाग बन गया है। प्लास्टिक की अनेक वस्तुएं हैं जिन पर हम निर्भर करते हैं। ये बच्चों के खिलौनों से लेकर हवाई जहाज में उपयोग में आती है। दैनिक जीवन से लेकर रसोईघर तक प्लास्टिक की पहुंच है। प्लेट, गिलास, कटोरी, डोगा, जग, जार, मिक्सी, पिकनिट सेट, डिसपोजेविल क्रॉकरी, रसोई में विभिन्न आमाप के कन्टेनर, थैले, मग, प्याले, वाल्टी, कुर्सी, मेज़, स्टूल, दरवाज़े कार के पुरजे, पंखा, बच्चों के खिलौनें, पेन, रेजर अधिकतर प्लास्टिक निर्मित है। आज हर जगह प्लास्टिक का उपयोग किया जा रहा है। यदि प्लास्टिक युग कहे तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

प्राकृतिक कच्ची वस्तुओं की कमी के कारण प्लास्टिक का आविष्कार हुआ और विभिन्न रूपों में उपयोग किया जा रहा है। कपड़ों और फर्नीचर में भी प्लास्टिक का बाहुल्य है। जनसंख्या विस्फोट के कारण वस्तुओं की मांग बढी है जो प्राकृतिक स्रोतों से पूरी नहीं हो पा रही है। अतः कृत्रिम रूप से आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए उपयोगी वस्तुओं का आविष्कार हुआ है। प्लास्टिक इसी श्रेणी में आता है। नायलोन व पालिएस्टर के आविष्कार से कपड़ा उद्योग में क्रांति आई। बढ़ती जनसंख्या को कपड़ों की पूर्ति हुई। नायलोन के कपड़े अधिक दिनों तक चलते हैं। अतः कम खर्चीले हैं, लेकिन नुकसानदेह है। इसी प्रकार कृत्रिम रबड़ बनाकर वाहन उद्योग में टायरों की आवश्यकता को पूरा किया गया है। आज प्लास्टिक उद्योग आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

द्वितीय विश्वयुद्ध से प्लास्टिक का उत्पादन शुरू हुआ जो आज प्रत्येक क्षेत्र में उपयोग किया जा रहा है। अतः प्लास्टिक का उत्पादन भी बढ़ रहा है। 1930 में थर्मोप्लास्टिक स्टाइरीन को वाइनिक क्लोराइड, एथिलीन और प्रोपेलीन से बनाया गया था। 1960 में प्लास्टिक उद्योग का विकास हुआ। 1973 में प्लास्टिक उद्योग चरम पर पहुंच गया। इस दौरान 40 मिलियन टन से अधिक उत्पादन हुआ जो 1990 में उत्पादन 86 मिलियन टन तक पहुंच गया।

प्लास्टिक के विशेष गुणों के कारण ही उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। प्लास्टिक को किसी भी आकार में मोड़ सकते हैं। प्लास्टिक धातुओं से हल्की होती है। यह निष्क्रिय होती है। अम्ल व क्षार का प्रभाव नहीं होता। कुछ प्लास्टिक को उच्च ताप सहने वाली बना लेते हैं। अतः ताप का भी प्रभाव नहीं होता। पानी से सरलता से साफ कर लेते हैं। प्लास्टिक पारदर्शी और इसकी पतली शीट बनाई जाती है। पतली शीट को पैंकिग में उपयोग करते हैं। आजकल हल्की, मोटी प्लास्टिक के छोटे, बड़े थैले सामान लाने के काम आ रहे हैं। लोह रहित धातुओं के साथ प्लास्टिक का उपयोग किया जा रहा है। बिजली के समान, बिजली के तारों के ऊपर कवरिंग, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, कार, विमान तथा स्वास्थ्य उद्योगों में प्लास्टिक का उपयोग निरंतर किया जा रहा है।

प्लास्टिक भिन्न–भिन्न प्रकार की बनाई गई है। जैसे– कम घनत्व की पॉलि एथिलीन (LDPE), उच्च घनत्व की पॉलि एथिलीन (HDPE), पॉलि वाइनिल (PVC), पॉलि एथिलीनटेरी एथिलीन (PET), पॉलि प्रोपिलीन (PP), पॉलि स्टाइरीन (PS), थर्मोसेटिग प्लास्टिक में फीनोलिक फार्मेल्डिहाइड, मेलामाइन फार्मेल्डिहाइड, यूरिया फार्मेल्डिहाइड, पॉलि यूरेथेन आती हैं। ये प्लास्टिक बहु–सतही प्लास्टिक है। थर्मोप्लास्टिक का पुनःचक्रण कर सकते हैं। पुनःचक्रण के उपरांत पुनः उपयोग में लाते हैं।

भारत में प्लास्टिक उद्योग की शुरूआत 1940 में हुई। 1969 में प्लास्टिक उद्योग अपने शिखर पर पहुंच गया। परंतु पेट्रोकेमिकल के मूल्य बढ़ने से 1970 के दशक में प्लास्टिक उद्योग में कमी आई। परंतु 1980 में पेट्रोकेमिकल कॉम्पलेक्सों के स्थापित होने से प्लास्टिक उद्योग में आत्मनिर्भरता आ गई। आज भारत में 4 किलो प्रति व्यक्ति प्लास्टिक का उपयोग हो रहा है। यद्यपि यह विश्व के प्लास्टिक उपयोग 19 किलो/ प्रति व्यक्ति से कम है। फिर भी इस प्लास्टिक उपयोग ने परेशानियां उत्पन्न की है।

नैप्था क्रेकर संयंत्र से एथिलीन प्राप्त होती है। जो उच्च घनत्व वाली (HDPE), कम घनत्व वाली पॉलि एथिलीन (LDPE), पॉलि वाइनिल (PVC) के बनाने में सहायक हैं। विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक के विभिन्न उपयोग हैं–

(1) पॉलि एथिलीन – पाइप, ट्यूब, थैले, बोतल के ढ़क्कन, खिलौने, पेंकिग व इनश्यूलेशन आदि के लिए काम आती है।

(2) पॉलि प्रोपेलीन – बोतल, सिरिंज, ओटोमोबाइल के पुरज़े, घरेलू सामान, बैटरी, बम्पर, बगीचे का फर्नीचर, पैकिंग सामग्री आदि बनाने में काम आती है।

(3) पॉलि स्टाइरिन – किचन के बर्तन, फर्नीचर कवर, खिलौने, रेजर आदि बनाने के काम आती है।

(4) पॉलि वाइनिल – पानी के पाइप, घेरलू सामान, फर्श की कवरिंग, बिजली के तार, इनश्यूलेशन, डोर कवरिंग, ओटोमोबाइल पुरज़े, खिलौने, टोंटी आदि बनाने में काम आती है।

(5) पॉलि टेट्रा एथिलीन (टेफलोन) – आर्थोपेडिक, प्रोसथेटिक एपलाइन्स, र की मशीन, जोड़, फ्राई पेन, इलेक्ट्रिक, इनश्यूलेशन, नॉन स्टिक किचन के बर्तन आदि बनाने में काम आती है।

(6) पॉलि मेथिल पेथा क्राईलेट – ऑप्टीकल धागा, कॉनटेक्ट लेंस, नियोन साइन बोर्ड आदि में काम आती है।

(7) पॉलि एमाइड – काउंटर, ईधन पाइप, जूते, साइकिल सीट आदि बनाने में काम आती है।

(8) सिलीकॉन तरल – बिजली के ट्रांसफारमर, एंटी एडिसिव कवरिंग, वार्निश, मोम, बर्न ट्रीटमेंट, कॉस्मेटिक सर्जरी आदि बनाने में काम आती है।

(9) यूरिया फार्मेल्डिहाइड – डिसेज, कार्बनिक ग्लास आदि बनाने में काम आता है।

(10) पॉलि एस्टर – बोतल, स्विच, सॉकिट, फ्यूल, प्लास्टिक रेप, कपड़े आदि बनाने में काम आती है।

प्लास्टिक बहुत उपयोगी है, परंतु पर्यावरण को प्रदूषित भी करती है। प्लास्टिक सरलता से नष्ट नहीं होती है। भारत में जनसंख्या विस्फोट, शहरीकरण के कारण प्लास्टिक का उपयोग बढ़ा है। साथ ही प्लास्टिक कूड़ा भी बहुतायत में इकठ्ठा हो रहा है। शहरों के बाहर जमीन का बहुत बड़ा भाग प्लास्टिक कबाड़ से ढका रहता है। जबकि ग्रामीण क्षेत्र में वनस्पति के साथ इधर–उधर पड़ा रहता है।

प्लास्टिक उदासीन होती है। कुछ प्लास्टिक कैंसर उत्पन्न करती है। प्लास्टिक भूभाग के जिस स्थान पर पड़ी रहती है उस स्थान पर जल और वायु नहीं पहुंच पाती। वनस्पति को ढक लेती है, अतः वनस्पति को नुकसान पहुंचता है। जलीय जंतुओं के लिए भी प्लास्टिक हानिप्रद है। 2000 में आस्ट्रेलिया के समुद्र के किनारे व्हेल मछली मरी हुई पाई गई। इसका पोस्टमार्टम करने पर पता चला कि व्हेल मछली के पेट में मुख्यतः प्लास्टिक बेग, फूड पेकेज, बेट बेग पाए गए। पेट में खाना नहीं था। अतः मृत्यु प्लास्टिक के कारण हुई। प्रत्येक वर्ष व्हेल, सील, कछुआ और चिड़िया प्लास्टिक खाकर मर जाती है।

कृत्रिम प्लास्टिक पर्यावरण को प्रदूषित करता है क्योंकि प्लास्टिक का निम्नीकरण नहीं हो पाता। दूसरी ओर प्लास्टिक कवाड़ को जलाने के कारण कार्बन

मोनोऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड, धुआं वातावरण में पहुंचकर पर्यावरण को प्रदूषित करता है। प्लास्टिक के जलने से उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड वैश्विक ऊष्मण का मुख्य कारण है।

प्लास्टिक का पुनःचक्रण कर प्लास्टिक कबाड़ की मात्रा को कम किया जाता है। इससे पर्यावरण प्रभावित नहीं होता। पुनः चक्रण से पहले प्लास्टिक कबाड़ को विभिन्न प्लास्टिक में से छांट लेते हैं। इन प्लास्टिक को क्रमवार छाटा जाता है। पॉलि एथिलीन टरपैलेट (PET) को नम्बर एक (01) तथा उच्च घनत्व वाली पॉलि एथिलीन को नम्बर दो (02) दिया गया है। उच्च घनत्व वाली पॉलि एथिलीन को पुनःचक्रण कर फेसिंग, लाइनर बनाते हैं। पॉलि स्टाइरिन को नम्बर छः (06) दिया गया है। इसका पुनःचक्रण कर कंघे, ट्रे आदि बनाते है। प्लास्टिक उपयोगी तो है लेकिन साथ ही हानिप्रद भी है।

आधुनिक जीवन में सुविधाजनक होने के कारण प्लास्टिक का उपयोग बहुत बढ़ गया है और प्लास्टिक आवश्यक हो गई है। इससे बचा नहीं जा सकता है। हमें खाने की वस्तुओं को प्लास्टिक पात्र में नहीं रखना चाहिए। खाने की गर्म वस्तुओं को भी प्लास्टिक पात्र में नहीं रखना चाहिए। प्लास्टिक के बर्तनों के स्थान पर मिट्टी, चीनी मिट्टी, कांच के बर्तन ही उपयोग करना चाहिए।

प्लास्टिक कूड़े को पृथक कूड़ेदान में इकट्ठा करना चाहिए। पिकनिक पर जाने पर उचित कूड़ेदान में प्लास्टिक कूड़ा डाले। पॉलि एथिलीन बैग के स्थान पर कागज़ या कपड़े के थैलों का उपयोग करना चाहिए।

अतः स्वास्थ्य की दृष्टि से पर्यावरण को बचाने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि प्लास्टिक का उपयोग कम से कम किया जाए।

ooo

3563 HRD/15—11A

19

भारत की वैज्ञानिक धरोहर : प्रोफेसर मेघानाद साहा

सतीशचन्द्र सक्सेना

वैज्ञानिकों की जीवनियां अत्यंत रोचक और शिक्षाप्रद होने के साथ–साथ हमारे देश के विद्यार्थियों, अध्यापकों और नवयुवकों भावी वैज्ञानिकों के लिए असीम प्रेरणा का स्रोत होती है। वैज्ञानिकों के जीवन भी अजीबोगरीब होते हैं और उन्हें भी जीवन की विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है।

कुछ वैज्ञानिक समृद्ध और संभ्रात परिवार में जन्म लेते हैं और सब कुछ छोड़कर स्वयं को तन, मन और धन से विज्ञान की सेवा में अर्पित कर देते हैं। कुछ वैज्ञानिक अपने जीवन में पूरी लगन और निष्ठा से शोधकार्य करते हैं और यश भी प्राप्त करते हैं परंतु उनके कार्य का श्रेय दूसरों को मिलता है। कुछ वैज्ञानिक धन और यश दोनों ही अर्जित करते हैं परंतु शोधकार्य करते–करते कंगाल हो जाते हैं और उनका अंतिम समय कष्ट में गुजरता है। कुछ ऐसे भाग्यशाली वैज्ञानिक भी होते हैं जो यशेष्ट संपत्ति अर्जित करते हैं और उनकी भावी संतति उसका सुख भोगती है। कुछ वैज्ञानिक ऐसे भी हैं जो निर्धन होते हुए भी अपने संघर्ष के बल पर ख्याति के शिखर पर पहुंचते हैं।

जब भी वैज्ञानिकों के जीवनवृत्त की चर्चा होती है तो सामान्यतः लेखक, भारतीय वैज्ञानिकों के शोधकार्यों और उनके योगदान को पूर्णतः विस्मृत कर विदेशी वैज्ञानिकों की जीवनियों पर ही समग्र ध्यान केंद्रित करते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारे विद्यार्थियों और यहां तक कि शिक्षकों को भी भारतीय वैज्ञानिकों, नाबेल पुरस्कार विजेताओं तक के शोधकार्यों और उनके जीवनवृत्त के बारे में जानकारी नही होती। सर सी.वी. रामन (भौतिकीविद्), प्रोफेसर बीरबल साहनी (वनस्पति विज्ञानी), सर जगदीश चंद्र बासु (जीव विज्ञानी), प्रोफेसर के.एस. कृष्णन (भौतिकीविद्), डॉ. होमी जे. भाभा (नाभिकीय वैज्ञानिक), सर शांति स्वरूप भटनागर (रसायनज्ञ), पूर्व राष्ट्रपति प्रोफेसर ए.पी.जे. अब्दुल कलाम (प्रक्षेपास्त्र विशेषज्ञ), शून्य के आविष्कारक महान गणितज्ञ प्रोफेसर रामानुजन आदि लंबी सूची के कुछ सदस्य हैं जिनके योगदान और शोधकार्य को किसी भी हालत में कम नहीं आंका जा सकता। दशमलव और अंकों का आविष्कार भारत में ही हुआ। ये अंक भारत से अरब देशों में गए और वहां से सारे यूरोप में प्रचलित हो गए। भारतीय संविधान में भी उल्लेख है कि सरकारी प्रयोजनों के लिए भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप ही मान्य होगा।

प्रोफेसर मेघनाद साहा भारत के उन महान सपूतों में से एक थे जिन्होंने भौतिकी में अपने शोधकार्यों से विश्व में भारत की विजयपताका फहराने में सक्रिय योगदान दिया। श्री मेघनाद साहा का जन्म 6 अक्टूबर 1893 को बंगाल (अब बांग्लादेश) के ढाका जिले में शेकरातली नामक गांव के एक गरीब परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री जगन्नाथ साहा तथा माता का नाम श्रीमती भुवनेश्वरी देवी था। उनके पिता अपने गांव में पंसारी की एक साधारण दुकान चलाते थे। उनकी माता घरेलू महिला थी। अपने माता–पिता की आठ संतानों में मेघनाद साहा पांचवी संतान थे।

मेघनाद साहा की प्रारंभिक शिक्षा उनके गांव में ही हुई थी। पढ़ाई के साथ–साथ कभी–कभी वे अपने पिता के साथ दुकान के कार्य में पिताजी की भी मदद किया करते थे। मेघनाद साहा की कुशाग्र बुद्धि, परिश्रम और

3563 HRD/15—11B

विलक्षण प्रतिभा से उनके अध्यापक अत्यंत प्रभावित हुए। उनकी स्मरण शक्ति गजब की थी।

शेवराताली के बाद उन्होंने सिमुलिया गांव में अध्ययन किया। यह गांव उनके घर से 14 मील दूर था। वहीं के डॉ. अनंत कुमार दास ने मेघनाद साहा के ठहरने की व्यवस्था करा दी थी। उनकी कृतज्ञता को ध्यान में रखते हुए वे डॉ. दास के छोटे–मोटे घरेलू काम में मदद कर दिया करते थे। 1905 की मिडिल की परीक्षा में वे पूरे स्कूल में ही नहीं बल्कि पूरे ढ़ाका जिले में प्रथम आए। परिणामस्वरूप, उन्हें सरकारी छात्रवृत्ति मिलने लगी जिससे उनकी आर्थिक समस्या का समाधान हो गया।

मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद 1905 में ही मेघनाद साहा ढ़ाका के कॉलेजिएट स्कूल में भर्ती हुए। उस समय उनकी आयु मात्र 13 वर्ष थी। उसी साल बंग–भंग के विरुद्ध असहयोग एवं विरोध प्रकट करने के कारण गर्वनर ने नाराज होकर मेघनाद के साथ–साथ अन्य छात्रों को स्कूल तथा कॉलेज से निकाल दिया और उनकी छात्रवृत्ति भी बंद कर दी। सौभाग्यवश, किसी तरह किशोरीलाल जुबली स्कूल नामक एक प्राइवेट संस्था ने उन्हें स्कूल में प्रवेश दे दिया। इसी स्कूल से उन्होंने 1909 में कलकत्ता विश्वविद्यालय इंट्रेंस (हाईस्कूल) की परीक्षा में सारे पूर्वी बंगाल में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1911 में मेघनाद ने ढ़ाका कॉलेज के छात्र के रूप में ढ़ाका विश्वविद्यालय से भौतिकी, रसायन, गणित और जर्मन भाषा में इंटरमीडिएट परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की।

अब मेघनाद साहा प्रेसीडेंसी कॉलेज में पढ़ने लगे। 1913 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से गणित में बी.एस.सी. आनर्स प्रथम श्रेणी में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। नेताजी सुभाष चंद्र बोस उनसे तीन साल पीछे थे। मेघनाद ने 1915 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से गणित में एम.एस.सी. परीक्षा प्रथम श्रेणी एवं द्वितीय स्थान सहित उत्तीर्ण की।

मेघनाद साहा के अध्यापकों में विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जगदीश चंद्र बसु, सर प्रफुल्ल राय और डी.एन. मल्लिक प्रमुख थे।

विश्वविद्यालय शिक्षा समाप्त करने के बाद वे नौकरी करना चाहते थे। उन्होंने भारतीय वित्त सेवा परीक्षा में बैठने का विचार किया किंतु क्रांतिकारी मित्रों के संपर्क में रहने के कारण उन्हें प्रवेश नहीं मिला। वे हत्तोसाहित नहीं हुए, वे कलकत्ता के श्याम बाज़ार और भवानीपुर क्षेत्र में रहने वाले छात्रों को प्राइवेट ट्यूशन पढ़ाकर अपना गुजारा करने लगे।

1916 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के गणित विभाग में प्रवक्ता (लेक्चरर) के पद पर उनकी नियुक्ति हो गई, किंतु किसी कारणवश उन्हें भौतिकी विभाग में भेज दिया गया। उन्होंने केवल अध्यापन के लिए ही नहीं अपितु भौतिकी में अनुसंधान करने के लिए गहन अध्ययन किया।

1923 में साहा ने कलकत्ता छोड़ दिया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में भौतिकी विभाग में अध्यक्ष पद ग्रहण किया। वे 15 वर्ष तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यक्ष पद पर रहे और इस बीच उन्होंने भौतिकी में महत्वपूर्ण शोधकार्य किए। उन्हें भौतिकी में योगदान के लिए एफ.आर.एस. (फैलो ऑफ रॉयल सोसाइटी) से भी सम्मानित किया गया। यह गौरव उस समय बहुत कम वैज्ञानिकों को प्राप्त था। कहा जाता है इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ. अमरनाथ झा से कुछ मतभेद हो जाने के कारण उन्होंने भौतिकी विभाग के अध्यक्ष पर से त्यागपत्र दे दिया। डॉ. झा ने शीघ्र ही डॉ. कृष्णन को अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया। डॉ. कृष्णन भी एफ.आर.एस. थे परंतु वे इलाहाबाद में अधिक समय तक नहीं रहे।

1934 में 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' ने उन्हें अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया। 1937–38 में डॉ. साहा 'राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस' के अध्यक्ष नियुक्त किए गए। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में 15 वर्षों तक अध्यक्ष रहने के बाद डॉ. मेघनाद साहा कलकत्ता विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में प्रोफेसर नियुक्त होकर वापस आ गए। कलकत्ता में पालित प्रोफेसर का पद भार संभालने के बाद उन्होंने अपने शोधकार्य को बिल्कुल भिन्न नई

दिशा दी। अब वे परमाणु और नाभिकीय भौतिकी में शोधकार्य में जुट गए। अंतरिक्ष किरण प्रयोगशाला स्थापित कर डॉ. साहा ने परमाणु अनुसंधान में पहला कदम रखा। नाभिकीय भौतिकी में अनुसधान के लिए आवश्यक साइक्लोट्रॉन संस्थापित करने के लिए पंडित जवाहर लाल नेहरु, कलकत्ता विश्वविद्यालय, टाटा सन्स तथा कुछ अन्य उद्योगपतियों ने डॉ. साहा को आर्थिक सहायता प्रदान की।

डॉ. साहा के प्रयासों के फलस्वरूप 1950 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में "यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ साइंस" के कैम्पस में सुप्रसिद्ध "इंस्टीटयूट ऑफ न्यूक्लियर फिजिक्स" स्थापित हुई जिसे बाद में "साहा इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर फिजिक्स" (SINP) का नाम दिया गया। इस संस्थान का विधिवत् उद्घाटन 11 जनवरी 1950 को सुप्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक क्यूरी दंपति और नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक आइरिन जोलियो क्यूरी ने किया। मेघनाद साहा आजीवन इस संस्थान के अवैतनिक निदेशक रहे।

एक रोचक प्रसंग के अनुसार भारत के तीन भौतिकीविद् डॉ. रामन, डॉ. साहा और डॉ. कृष्णन एक सम्मेलन में भाग ले रहे थे। ये तीनों एफ.आर.एस. थे जो उस समय बहुत सम्मानजनक माना जाता था। सम्मेलन से बाहर आते समय एक फोटोग्राफर ने उन तीनों का फोटो लेना चाहा और कहा कि यह सुखद संयोग है कि मैं तीन एफ.आर.एस. को एक साथ देख रहा हूं। डॉ. रामन स्वभाव से विनोद प्रिय थे उन्होंने तत्काल चुटकी ली और कहा "We are not FRS we are KRS" हैं अर्थात् कृष्णन, रामन और साहा।

डॉ. साहा ने अपनी दूरदृष्टिता और अदम्य उत्साह के फलस्वरूप दो महत्वपूर्ण अनुसंधान विभागों की स्थापना की जिनमें एक विभाग नाभिकीय भौतिकी के लिए और दूसरा जीव भौतिकी के लिए था।

1938 में साहा को कलकत्ता विश्वविद्यालय में "बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट" का निदेशक नियुक्त किया गया। एक वैज्ञानिक के रूप में डॉ. साहा के कुछ महत्वपूर्ण आविष्कार "ताप सिद्धांत, स्पेक्ट्रोस्कोपी, परमाणु संरचना तथा डाइरेक का परमाणु सिद्धांत" है।

उनकी प्रतिभा, देशभक्ति और इमानदारी के कारण कलकत्ता की जनता ने 1952 में उनको भारी बहुमत से लोकसभा के लिए निर्दलीय सदस्य के रूप में चुना था।

डॉ. साहा की देशसेवा अपूर्व है। शैक्षिक और अनुंसधान संस्थाओं को स्थापित करने, वैज्ञानिकों का मार्ग दर्शन और उन्हें अभिप्रेरित करने और राष्ट्रीय योजनाओं को सुचारू रूप से चलाने में उन्होंने अथक प्रयास किए। 16 फरवरी 1956 को अत्यंत महत्वपूर्ण कागज़ातों के साथ राष्ट्रपति भवन जाते समय डॉ. साहा बेहोश होकर गिर पड़े। उन्हें अस्पताल ले जाया गया परंतु तब तक उनका देहांत हो चुका था।

उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट शोधकर्त्ता वैज्ञानिकों को डॉ. मेघनाद साहा स्मारक पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है।

ooo

परिशिष्ट

समीक्षा

विज्ञान गरिमा सिंधु के प्रवेशांक से

लेखक–परिचय

आयोग के प्रकाशनों की सूची

ग्राहक फार्म

बिक्री संबंधी नियम

प्रकाशन विभाग भारत सरकार के बिकी केंद्रों की सूची

विज्ञान गरिमा सिंधु के प्रवेशांक से...

गंगा की गरिमा : एक वैज्ञानिक विवेचन

महाराज नारायण मेहरोत्रा

भूमिका

'गंगा' शब्द में ही कुछ अद्भुदता है। यह शब्द हमारे देश की संस्कृति से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। इसमें आध्यात्मिकता का बोध भी है और धार्मिकता का पुट भी। हमारे ऋषि–मुनियों ने गंगा की महिमा का वर्णन किया है, शास्त्रों और धर्मग्रंथों ने इसकी गाथा गाई है। इसी पवित्र पावनी गंगा की गरिमा कर यहां वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है, विशेषकर आज के संदर्भ में जबकि हमारे देश में सर्वत्र गंगा–शुद्धिकरण की ध्वनि सुनाई देती है।

पिछले तीन दशकों से पर्यावरण प्रदूषण जनचर्चा का विषय हो गया है। पर्यावरण के दो मुख्य अवयव है– जल और वायु। ये जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं है अतः उनकी ओर सभी का ध्यान जाना स्वाभाविक है। वायु विषाक्त होगी तो जीवन का अस्तित्व न रह पाएगा, इसी प्रकार जल यदि सीमा से अधिक दूषित हो गया तो मनुष्य का जीना मुश्किल हो जाएगा।

पर्यावरणीय समस्याएं पहले भी थी, पर अब इन समस्याओं ने जनसंख्या वृद्धि व उद्योगों के विकास के कारण अपेक्षाकृत उग्र रूप धारण कर लिया है। यहां तक कि बहुत से क्षेत्रों में मानव जीवन के अस्तित्व को भी खतरा पैदा हो गया है। सन् 1953 में जापान की मिनीमाटा खाड़ी की दुर्घटना से, जिसमें सैकड़ों व्यक्ति जल–प्रदूषण के कारण काल–कवलित हो गए, विश्व में तहलका मच गया। इस घटना ने वैज्ञानिकों को भी झकझोर दिया और पर्यावरण प्रदूषण एक अपरिहार्य विषय बन गया। प्रदूषण की दृष्टि से जल के अध्ययन को विशेष महत्व मिलने लगा और वैज्ञानिक, प्रदूषण–निवारण के उपाय ज्ञात करने की दिशा में जुट गए। उन्हें सफलता भी मिली। इंग्लैंड की थेम्स नदी तथा फ्रांस की सेन नदी वैज्ञानिक प्रयासों की सफलता के उदाहरण है।

हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि और औद्योगीकरण के विकास के साथ–साथ पर्यावरणीय समस्याएं पैदा हो रही है। बहुत–सी नदियों का जल प्रदूषित हुआ है। हमारी पवित्र पावनी गंगा भी इससे अछूती नहीं बची है। गंगा भी प्रदूषित हुई पर अन्य नदियों की अपेक्षा, उसमें स्व–शुद्धिकरण क्षमता अत्यधिक होने के कारण, उसके प्रदूषण का प्रभाव क्षेत्र बहुत सीमित रहा। इसकी स्व–शुद्धिकरण क्षमता की विवेचना करने से पूर्व इसके उद्भव और अपवाह–क्षेत्र का ज्ञान आवश्यक है।

गंगा का उद्भव एवं अपवाह–क्षेत्र

हिमालय की जटिल पर्वत श्रृंखलाओं में अनेक गंगा है। इसमें मंदाकिनी, अलकनंदा और भागीरथी प्रमुख हैं। भागीरथी गढ़वाल हिमालय में 4100 मीटर ऊंचाई पर स्थित गोमुख से निकलती है, अलकनंदा का उद्गम अलकापुरी हिमनद है। देवप्रयाग के निकट भागीरथी और अलकनंदा का संगम होता है पर इससे पूर्व ही मंदाकिनी अलकनंदा में जा मिलती है। इस प्रकार त्रिपथगा गंगा बनती है और यही हमारी गंगा है। सागर तक अपनी 2525 किमी. की यात्रा में गंगा भारत के तीन जनसंख्या बहुल प्रदेशों, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिमी बंगाल से होकर जाती है और अंततः

बंगाल की खाड़ी में गंगा सागर में समुद्र का आलिंगन करती है। गंगा का अपवाह–क्षेत्र लगभग 861,404 वर्ग किलोमीटर है। इस प्रकार यह उपरोक्त तीन प्रदेशों के अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और मध्यप्रदेश के वृहत भागों को भी अपनी जलधारा से अभिसिंचित करती है। गंगा में जल का वार्षिक प्रवाह 468 अरब 70 करोड़ घनमीटर है। इस प्रकार यह संपूर्ण भारत के जल साधन के लगभग एक–चौथाई की पूर्ति करती है। इस क्षेत्र में देश की लगभग 37 प्रतिशत जनसंख्या का निवास है। इस प्रकार यह कृषि–प्रधान देश भारत की रीढ़ है।

गंगा–तट पर बसे नगरों की संख्या लगभग एक सौ है। जिनमें से 29 की आबादी एक लाख से अधिक है, 23 की पचास हजार से एक लाख के बीच है और 48 की जनसंख्या पचास हजार से कम है। इनके अतिरिक्त सैकड़ों तटवर्ती गांव हैं जिनकी जलापूर्ति का मुख्य साधन भी गंगा ही है।

गंगा जल

गंगा जल को अमृत की संज्ञा दी गई है। इसकी मिट्टी और जल को अत्यंत पवित्र माना गया है।

मे पुण्यवाहिनी गङ्ग सकृदक्तयावागाहिता तेषां।
कुलानां लक्षन्तु मयात तारयते शिवा।।
अनेकजन्मसम्भूतं पापं पुंसां पुणश्यति।
स्नानमात्रेण गङ्गाया सघः पुण्स्य भाजनम्।।

भावार्थ – श्रद्धा से गंगा में स्नान करने पर मनुष्य के जन्म–जन्मांतर के पाप नष्ट हो जाते हैं और वह पवित्र हो जाता है। गंगा सहस्रों प्रकार के खतरों से उसकी और उसके वंशजों की रक्षा करती है।

(ब्रह्मानंद पुराण)

मृत्तिके ब्रह्मापूतासि काश्यपैनाभिवंदित
त्वया इतेन पापेन गच्छामि परमां गतिम।।

भावार्थ – इस मिट्टी की पूजा ब्रह्मा आदि देवताओं ने की है, उन्होंने इसे पापहारिणी कहा है, इसके धारण से समस्त पापों का नाश हो जाता है और परमगति प्राप्त होती है। (आहिक सूत्रावली)

हर भारतीय, विशेषकर हिंदुओं में गंगा–दर्शन, गंगातट–वास, गंगाजल सेवन तथा अंत समय में गंगातट पर अपनी मुक्ति की कामना बनी रहती है। हिंदुओं के लिए गंगा पतित–पावनी, पापहारिणी और मोक्षदायनी है।

तथापि गंगा मुसलमानों की भी पूज्य रही है। बंगाल के संत कवि दरफ़ान ख़ान ने अपनी अनुपम संस्कृत रचना में गंगा की स्तुति की है। रहीम के जीवन की एक साध थी कि "गंगा सिर पर रहे।" बहुत से मुग़ल बादशाह अपनी यात्राओं में भी गंगाजल साथ रखते थे। अबुल फ़जल ने लिखा है कि मुग़ल सम्राट अकबर पीने के लिए केवल गंगाजल का ही प्रयोग करते थे। इस संदर्भ में तत्कालीन एक उदाहरण अप्रांसगिक न होगा–

"एक बार अकबर ने अपने दरबार में पूछा, सबसे उत्तम जल किस नदी का है? सारे दरबारियों ने कहा– गंगा का। अंत में बीरबल से पूछा गया तो उसने उत्तर दिया– यमुना का। इस पर अकबर आश्चर्य में पड़ गए और उन्होंने कहा कि बीरबल तुम यमुनाजल को सर्वोत्तम कह रहे हो, गंगाजल को क्यों नहीं? इस पर बीरबल ने उत्तर दिया, गंगाजल कोई जल थोड़े ही है, वह तो अमृत है।"

इतना ही नहीं बहुत से विदेशी विद्वानों और वैज्ञानिकों ने भी गंगाजल की महत्ता को स्वीकारा है। लगभग सौ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध अमरीकी यात्री मार्क–ट्वेन भारत आया, उसने वाराणसी यात्रा के दौरान अपने विवरण में लिखा है कि उन दिनों नगर में हैज़ा फैला हुआ था और गंगा में मरे हुए व्यक्तियों की लाशें बहा दी जाती थीं और उन्हीं लाशों के पास बहुत से लोग बिना किसी परवाह के नहाते रहते थे। ये देखकर उसको आश्चर्य हुआ तथा उसने गंगा के उस 'विषैले, अपवित्र पानी' के नमूने इकट्ठे करके विश्लेषण करवाया तो आश्चर्यचकित रह गया कि जल में हैज़े कीटाणु तो थे पर मरे हुए। इसकी तुलना में अन्य स्थानों के जल में हैज़े के कीटाणु जीवित थे और उनकी संख्या में वृद्धि हो रही थी।

तत्कालीन संयुक्त प्रांत और मध्य प्रांत के सरकारी वैज्ञानिक डॉ. ई. हेनबरी हेनकिन ने गंगाजल का परीक्षण करके बतलाया कि गंगाजल में हैज़े के कीटाणु मारने की अद्भुत शक्ति है। हैज़े के कीटाणु गंगाजल में तीन–छह घंटे के अंदर ही मर जाते हैं। उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि खुले बर्तन में गरम करने पर जल की यह शक्ति न जाने कहां चली जाती है (भार्गव 1985)।

कनाडा के मैकगिल विश्वविद्यालय के डॉ. एफ. सी. हेरिसन ने गंगाजल की विशिष्टता का वर्णन किया है। फ्रांस के प्रसिद्ध डॉ. डी. हैरले ने भी गंगा के पवित्र जल की रोगजनक कीटाणुओं को मारने की क्षमता का उल्लेख किया है। ब्रिटिश डॉ. सी. ई. नेलसन ने लिखा है कि कलकत्ता से लंदन तक की लंबी समुद्र यात्रा के दौरान गंगाजल 'ताजा' बना रहता है।

कदाचित् इसी 'ताजेपन' के कारण हमारे शास्त्रों के अुनसार भगवान पर 'बासी' गंगाजल चढ़ाया जा सकता है क्योंकि गंगाजल बासी नहीं होता है, पर बासी फूल नहीं चढ़ाए जाते और न बासी भोग ही लगाया जाता है।

गंगाजल के गुण तथा जल–कोटि

गंगा के इस अमृतरूपी जल पर भी किन्हीं–किन्हीं क्षेत्रों में अब एक प्रश्नचिह्न लग गया है। विशेषकर तटीय नगरों के समीप जहां जनसंख्या अधिक है, नगर का कूड़ा–कचरा सीधे ही नदी में बहा दिया जाता है, जहां उद्योग लगे हैं वहां उनके अपशिष्ट बिना किसी उपचार के नदी में छोड़ दिए जाते हैं। इससे जल की निर्मलता नष्ट हुई है। जल प्रदूषित हुआ है। उपरोक्त के अतिरिक्त, घाटों पर तेल, साबुन के अत्याधिक प्रयोग तथा अधजली लाशों के प्रवाह से भी प्रदूषण बढ़ा है। हरित क्रांति के मूल रासायनिक उर्वरक तथा कीटनाशकों के बढ़ते प्रयोग से भी जल की शुद्धता को खतरा पैदा हो गया है। कीटनाशी रसायनों में सीसा, पारा, कैडमियम, आर्सेनिक जैसे विषैले तत्व होते हैं। ये खेतों से रिस–रिस कर नीचे की ओर जाते हैं और अंततः नदी में मिल जाते हैं।

वैज्ञानिक इस जल की अशुद्धता को ज्ञात करते हैं। वे उसके रंग, तापमान, आविलता, कठोरता, विद्युत–चालकता, क्षारीय और उसमें समाविष्ट फ्लोराइड, नाइट्रेड आदि की मात्रा का अध्ययन करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जल में विलेय ऑक्सीजन की मात्रा, जल की जैवरासायनिक–ऑक्सीजन की आवश्यकता तथा कोलीफार्म जीवाणु की मात्रा ज्ञात करते हैं। जल–प्रदूषण की दृष्टि से उपर्युक्त तीन प्राचलों (पैरामीटरों) का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

जल में विलेय ऑक्सीजन की मात्रा

जिस प्रकार ऑक्सीजन मानव की मूल आवश्यकता है, उसी प्रकार किसी भी जल की सुरक्षा का आधार ऑक्सीजन है। जल के भौतिक और रासायनिक गुण, जल की विलेय ऑक्सीजन की मात्रा पर निर्भर है। ऑक्सीजन की प्रचुरता जल की स्वच्छता और ऑक्सीजन की कमी जल की मलिनता का द्योतक है। वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया है कि उच्च कोटि के जल में प्रति लिटर में कम से कम पांच मिलिग्राम ऑक्सीजन होनी चाहिए।

जैव–रासायनिक ऑक्सीजन की आवश्यकता

यह ऑक्सीजन की अपेक्षित मात्रा है जो जीवाणुओं (बैक्टीरिया) द्वारा कार्बनिक पदार्थ के ऑक्सीजन के लिए आवश्यक है। जल की जैव–रासायनिक ऑक्सीजन की मांग जितनी कम होगी, जल उतनी ही उत्तम कोटि का होगा। उत्तम श्रेणी के जल के लिए प्रति लिटर में जैव–रासायनिक ऑक्सीजन की मांग 2 मिलीग्राम से अधिक नहीं होनी चाहिए।

संपूर्ण कोलीफार्म गणना

ये जीवाणुओं का एक वर्ग है जो मनुष्य की आंतों में तथा वनस्पतियों में पाया जाता है। इनकी प्रचुरता से जल प्रदूषित हो जाता है और जलवाहित रोगों का प्रसार होता है।

उपर्युक्त तीनों प्राचलों के आधार पर जल की कोटि निर्धारित की गई है (दासगुप्ता, 1984)।

गंगाजल की विशिष्ट गुण

जलकोटि	विलेय ऑक्सीजन मिग्रा/लिटर (न्यूनतम)	जैव रासायनिक ऑक्सीजन की आवश्यकता किग्रा/लिटर (अधिकतम)	संपूर्ण कोलीफॉर्म की गणना (अधिकतम)
क	6	2	50
ख	5	3	500
ग	4	3	5,000
घ	4	–	–
ङ	–	–	–

(क) यह जल रोगाणुनाशन (डिसइन्फेक्शन) के उपरांत पीने के काम में लाया जा सकता है।

(ख) सामूहिक स्नान के लिए उपयुक्त।

(ग) उचित उपचार एवं रोगाणुनाशन के बाद पीने के काम में लाया जा सकता है।

(घ) वन्य जीवन और मत्स्य उत्पादन के लिए उपयुक्त।

(ङ) सिंचन आदि के लिए उपयुक्त।

गंगा के प्रवाह–मार्ग में जल–प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अंतर्गत 39 मॉनीटरिंग स्टेशन हैं, जहां नियमित रूप से जल का परीक्षण होता रहता है। ऊपर वर्णित तीन प्रमुख गुणों के आधार पर गंगा के किनारे बसे कुछ प्रमुख नगरों के जल की कोटि नीचे दर्शाई गई है–

मॉनीटरिंग स्टेशन	संपूर्ण कोली-फार्म की स्थिति	विलेय ऑक्सी-जन की स्थिति	जैव रासायनिक ऑक्सीजन की आवश्यकता	समग्र जल-कोटि
1	2	3	4	5
1. ऋषिकेश	ग	ख	ख	ख
2. हरिद्वार	ग	ग	घ	ग
3. कन्नौज	घ	ख	घ	ग
4. कानपुर,	घ	ग	घ	घ
ऊपरी धारा				
5. कानपुर,	घ	घ	घ	घ
निचली धारा				
6. इलाहाबाद,	घ	क	घ	घ
ऊपरी धारा				
7. इलाहाबाद,	घ	क	घ	घ
निचली धारा				
8. मिर्जापुर	घ	क	घ	घ
9. वाराणसी,	घ	क	घ	घ
ऊपरी धारा				
10. वाराणसी,	घ	क	घ	घ
निचली धारा				
11. बक्सर	घ	क	ख	ग
12. खुरजी, (पटना-	घ	क	ख	ग
ऊपरी धारा)				
13. गंगाब्रिज (पटना-				
निचली धारा)				
14. मुंगेर	घ	क	ग	ग
15. भागलपुर	घ	क	ख	ग
16. फरक्का	घ	क	क	ग
17. नवादिप	घ	क	क	ग
18. कल्याणी	घ	ख	घ	घ
19. दक्षिणेश्वर	घ	घ	घ	घ

उपर्युक्त सारणी से ज्ञात हुआ है कि नगरों के निकट गंगाजल (ग) और (घ) कोटि का है तथापि यह उल्लेखनीय है कि वर्षभर गंगाजल का उपयोग पीने और नहाने के लिए किया जाता है, अर्थात् दूसरे शब्दों में, मानो कि वह जल (ख) और (क) कोटि का हो।

गंगाजल के विशिष्ट गुण

अन्य नदियों के जल की तुलना में गंगा के जल में कुछ विशिष्टताएं पाई गई हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पर इन विशिष्टताओं के कारणों का पूरा पता अभी वैज्ञानिक नहीं लगा पाए हैं। हमारे धार्मिक ग्रंथों में भी गंगाजल के गुणों का उल्लेख है, पर उनके कारणों का नहीं।

राजनिर्घन्ट में श्लोक है –

अख्या जलत्य गुणा : शीतत्वम्, स्वादुत्वम्, स्वच्छत्म्,
अत्यन्तस्च्यत्म् पथ्यत्वम्,
पावनत्वम्, पापहरित्वम्, तृष्णामोध्वसत्म्,
दीपनत्वम्, प्रज्ञा धरित्वच, इति राजनिर्घण्ट।।

भावार्थ – गंगाजल के गुण हैं – शीतलता, मिठास, पारदर्शकता, उच्चशक्ति वर्धकता, परिपूर्णता, पेयता, अनिष्ट को दूर करने की क्षमता, निर्जलीकरण द्वारा उत्पन्न मूर्छा को दूर करने की क्षमता, पाचक शक्ति तथा प्रज्ञा (विवेक) को बनाए रखने की क्षमता।

पुराणों में उल्लेख है कि गंगाजल में अनेक जड़ी–बूटियां तथा खनिज–तत्व हैं जो शरीर को नीरोग ही नहीं रखते वरन् आत्मा को भी पवित्र करते हैं। इसमें 'गंगे' नामक एक सोम है जिसे ग्रहण करने से एक आश्चर्यजनक शक्ति उत्पन्न होती है पर वह सोम क्या है? जड़ी–बूटियां कौन–सी है? वे खनिज–तत्व कौन–से हैं जिन्होंने गंगाजल को 'अमृत' बनाया है? इस संबंध में हमारा ज्ञान अत्यंत सीमित है।

गंगा को ये तत्व अपने उद्गम स्थल और अपवाह क्षेत्र से ही प्राप्त हुए होंगे। इन्हीं अवयवों ने गंगाजल को विशिष्ट बनाया है। उसकी कीटाणुनाशक क्षमता को अन्य नदियों की अपेक्षा उच्च कोटि का बनाया है। इस दिशा में विस्तृत शोध की आवश्यकता है। इस दृष्टि से गंगा के उद्गम स्थल और अपवाह क्षेत्र की पारिस्थितिकी का ज्ञान आवश्यक है। वहां के शैलों और मिट्टियों का, उनमें विद्यमान खनिज तत्वों का गहन अध्ययन

3563 HRD/15—12

अपरिहार्य है। साथ ही आवश्यकता है उन क्षेत्रों की वानस्पतिकी एवं वहां उपलब्ध जड़ी–बूटियों के विस्तृत ज्ञान की। गंगाजल के जीवाणु–संबंधी गुणों का ज्ञान भी अधूरा है। इस पर भी जो कुछ तथ्य वैज्ञानिकों के प्रयासों से ज्ञात हुए हैं, यहां समाविष्ट किए गए हैं :–

(1) गंगा जल में विलेय ऑक्सीजन की मात्रा उसके पूरे प्रवाह मार्ग में केवल कुछ तटीय नगरों को छोड़कर पांच मिलिग्राम प्रति लिटर से अधिक है। इस विलेय ऑक्सीजन की महत्ता का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

(2) गंगा की अद्भुत क्षमता के कारण उसमें होने वाला कार्बनिक प्रदूषण एक दिन में ही दूर हो जाता है, अर्थात् गंगा लगभग 100 किमी. बहने पर अपने में होने वाले कार्बनिक प्रदूषण को एक दिन में ही दूर कर देती है।

(3) गंगाजल में गंधक, सोडियम, कैल्सियम और नाइट्रोजन की मात्रा हानिकारक सीमा से कम है, यद्यपि कहीं–कहीं नाइट्रोजन की मात्रा में असंगतियां पाई गई हैं। गंगाजल में संपूर्ण कोलीफार्म कीटाणुओं की मात्रा में अत्यधिक विचरण पाया गया है, और यह बहुत से स्थानों पर निर्धारित प्रभाव सीमा से अधिक है।

(4) गंगाजल की हाइड्रोजन आयन सांद्रता 7 और 9 के बीच विचरित करती है अर्थात् गंगाजल अम्लीय न होकर क्षारीय है।

(5) गंगा के विद्युत रासायनिक गुणों का योगदान भी संभवतया उसकी विशिष्टता का कारण है। गंगा और उसकी बहुत–सी सहायक और उपसहायक नदियां अति उच्च पर्वत शृंखलाओं से निकलती है। यह तीव्र ढालों पर होकर बहती है अतः अत्यंत वेगवती है। इसके अतिरिक्त चार महीनों के भीतर केंद्रित मानसूनी वर्षा के कारण भी इसका वेग बहुत बढ़ जाता है। तीव्र ढलानों में गिरने तथा वेगवती धाराओं के संगम से विद्युत उत्पन्न होती है जिससे जल का आयनीकरण हो जाता है, और जल शक्तिशाली हो जाता है। ग्रीष्मकाल में भी इन नदियों में हिमनदों के पिघलने से जल प्राप्त होता रहता है। अतः वर्ष भर इनमें प्रवाह बना रहता है। इसके अतिरिक्त गंगा की गहराई की भिन्नता और इसका सर्पिल मार्ग भी गैसों के अर्श वितरण तथा रसायनों के त्वरित विलयन में सहायक होता है (घोष 1985)।

(6) गंगाजल में कुछ बहिर्कोशिकीय बहुलक (एक्सोसेलुर पॉलीमर्स) हैं जिनकी जैविक क्रिया में भी निम्नीकरण नहीं होता। ये जल में दीर्घकाल तक रहते हैं तथा कोलॉयडी पदार्थ का जमाव (कोएगुलेशन) करते हैं और इस प्रकार वे पदार्थ अंततः नीचे बैठ जाते हैं (भार्गव 1985)।

इस परिप्रेक्ष्य में गंगा की तलछट का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है। बहुत से विषैले पदार्थों, विषाक्त तत्वों को गंगा की तलछट अपने में समा लेती है। तलछट के ये गुण उसके मौलिक रासयानिक एवं खनिजीय संगठन पर बहुत कुछ निर्भर हैं। कुछ विशेष प्रकार के मृदा खनिजों में विषाक्त पदार्थों को सोखने की बड़ी क्षमता होती है। इस प्रकार तलछट जल–प्रदूषण निवारण में महत्वपूर्ण योगदान करता है। तथापि यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ जीवाणुओं की प्रक्रिया के फलस्वरूप ये तत्व परिवर्तित होकर पुनः जल में मिल सकते हैं। जल की रासायनिक प्रक्रिया के फलस्वरूप हाइड्रोजन आयन सांद्रता पर निर्भर विषाक्त धातुएं तलछट में बैठ जाती है। उदाहरणस्वरूप वाराणसी में मुख्य सीवर के निकट के तलछट का वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर पता चला कि उसमें सामान्य तत्व, जैसे अल्मूमिनियम, सिलिकॉन, कैलशियम आदि के अतिरिक्त विषाक्त अवयव, जैसे पारा, कैलशियम, सीसा, जस्ता, क्रोमियम, टाइटेनियम, फांसफोरस आदि भी विद्यमान है (मेहरोत्रा 1984)।

गंगा की गरिमा की रक्षा

हमारे ऋषि–मुनियों ने भी गंगा की गरिमा बनाए रखने के लिए कुछ नियम बनाए थे। यदि उन नियमों का पालन किया गया होता तो गंगा की आज वह स्थिति न होती जो हमें उसके निर्मलीकरण के लिए बाध्य कर रही है और गंगा जैसी पवित्र नदी के लिए हम प्रदूषण जैसा शब्द प्रयोग में लाने लगे हैं।

ब्रह्मानंद पुराण में वर्णित है –

गंगा पुण्यजलां प्राप्य त्रयोदशविवर्जयेत।
शौचमाचमनं सेकं निर्माल्यं मलघर्षणम।
गात्र संवाहनं क्रीड़ां प्रतिग्रहमथो रतिम्।
अन्यतीथे रतिचैअः अन्य तीर्थ प्रशंसनम्।

वस्त्र त्यागमथाघातं संतारंच विशेषतः।।

भावार्थ – गंगा में निम्नलिखित 13 कार्य वर्जित है – मल त्याग करना, प्रक्षालन, मूत्र त्याग करना, प्रयुक्त फूल–पत्ती चढ़ावों का फेंकना, गंदगी धोना, साबुन लगाना, आमोद–प्रमोद करना, दान लेना, अभद्रता करना, गलत तरीके से अनुचित और विशेषकर आर–पार करना।

गंगा की गरिमा बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि इस उपर्युक्त नियमों का पालन करें, विशेषकर नगरों की गंदगी, मलमूत्र, कूड़ा–कचरा गंगा में प्रवाहित न करें। यह ज्ञात है कि गंगा की 75 प्रतिशत गंदगी का कारण नगरों के मल–जल–नाले हैं जो विभिन्न प्रकार की गंदगी गंगा को देते हैं। आवश्यकता है कि इन नालों को नगर के क्षेत्रों से दूर ले जाया जाए तथा जल–मल उपचार संयंत्रों द्वारा उनके हानिकारक अवयवों को दूर कर दिया जाए।

इसी प्रकार कल–कारखानों के कूड़े को भी नदी में गिराने से पहले उपचारित किया जाए ताकि हानिकारक तत्व दूर हो जाएं। इसके लिए उद्योगों को प्रदूषण–निवारण संयंत्र लगाने के लिए बाध्य किया जाए।

सबसे अधिक हानि अपवाह क्षेत्र में जंगलों की कटाई से हुई है। अतः गंगा के किनारे–किनारे जहां संभव हो तथा उसके अपवाह क्षेत्र में वृक्षारोपण का कार्यक्रम बड़े पैमाने पर किया जाए। इससे कई लाभ होंगे। मृदा–अपरदन नहीं होगा और फलस्वरूप मिट्टी और गाद के अधिक बहकर न आने से गंगा का तल उथला नहीं होगा। बाढ़ के प्रकोप में कमी होगी तथा वर्षा समुचित होगी। इससे नदी के जल की मात्रा में कमी नहीं आएगी। गंगा वेसिन का केवल 14 प्रतिशत भाग ही वनों से ढका है जबकि हमारी वन–नीति के अनुसार उसके 33 प्रतिशत भाग में वन होने चाहिए। यहां यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि गंगा क्षेत्र से बहुत–सी नहरें निकाली गई हैं जिसके परिणामस्वरूप भी उसकी जल–मात्रा में कमी आई है।

यह संतोष की बात है कि भारत सरकार ने गंगा प्राधिकरण की स्थापना करके गंगा के जल को निर्मल करने की महती योजना का कार्य आरंभ कर दिया है। पर इस योजना में जन–सहयोग वांछनीय है। आशा की जाती है कि इंग्लैंड के थेम्स प्राधिकरण के कार्य के फलस्वरूप जिस प्रकार वह नदी शुद्ध हो गई उसी प्रकार गंगा प्राधिकरण के प्रयासों से गंगा का जल, जहां दूषित हो गया है, निर्मल हो जाएगा और हमारी गंगा की गरिमा बनी रहेगी।

ooo

संदर्भ सूची

1. घोष, शैलेंद्र नाथ (1985) – "क्लीनिंग द गंगा" हिंदुस्तान टाइम्स, 23 अगस्त
2. मेहरोत्रा, एम.एन. आदि (1984) – "टॉक्सिक मेटल्स इन गंगा रिवर सेडीमेंट्स" नेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन पॉल्यूशनल स्ट्रैस इन मेजर इंडियन रिवर बेसिन्स (एब्सट्रेक्ट्स) अलीगढ़, 19–21 मार्च
3. भार्गव, डी.एस. (1985) – "एक्सप्लाईटेशन ऑफ द एक्सट्रीमली हाई सेल्फ प्यूरीफाइंग एबिलिटीज़ ऑफ द गंगा फॉर इट्स पॉल्यूशन एवेटमेंट स्ट्रेटजीस" जनरल, इंस्ट्टीच्युट पब्लिक हेल्थ इंजीनियर्स (स्पेशल इश्यू), पृष्ठ 22–27
4. दास गुप्ता एन.पी. (1984) – द गंगा बेसिन, सेंटर फॉर स्टडी ऑफ मैन एंड एनवायरनमेंट, कलकत्ता एवं सेंट्रल बोर्ड फॉर द प्रिवेन्शन एंड कंट्रोल ऑफ वाटर पॉल्यूशन, नई दिल्ली।

3563 HRD/15—13

समीक्षा...

ज्यामिति द्विमीय एवं त्रिविमीय

प्रस्तुत पुस्तक 'ज्यामिति द्विमीय एवं त्रिविमीय' के सहायक प्रोफेसर डॉ. दीपक कुमार श्रीवास्तव द्वारा लिखित है। जहां आज अंग्रेजी माध्यम को लेने की होड़ लगी है वहीं डॉ. श्रीवास्तव का यह प्रयास अत्यंत प्रशंसनीय है। पुस्तक का प्रकाशन पीयरसन, एज्युकेशन, दक्षिण एशिया की सहयोगी कंपनी डॉर्लिंग किंडरस्ली (भारत) प्रा. लि. द्वारा करना भी एक महत्वपूर्ण बात है, क्योंकि जितनी बड़ी व ख्याति प्राप्त स्तरीय प्रकाशन कंपनी है उतना ही पुस्तक प्रचलन होने की संभावना होती है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व के बावजूद कंपनी ने इसे हिंदी में प्रकाशित किया है।

यह पुस्तक स्नातक स्तर पर गणित की महत्वपूर्ण विधा निर्देशांक ज्यामिति पर आधारित है। इसमें द्विमीय एवं त्रिविमीय निर्देशांक ज्यामिति को वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रमाणित 'शब्द संग्रह एवं शब्दावली' में उपलब्ध शब्दों को अंग्रेजी भाषा के प्रचलित अक्षरों के साथ सरल समायोजन के रूप में दर्शाया गया है। इस शब्दावली पर आधारित स्नातक स्तर पर हिंदी भाषा में ज्यामिति की यह एक अच्छी पुस्तक है, जो हिंदी भाषा से स्नातक स्तर पर अपनी शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

हिंदी भाषा में प्रस्तुत इस पुस्तक ज्यामिति में सभी परिभाषाओं एवं कथनों को आवश्यकता के अनुसार चित्रों के माध्यम से प्रभावी ढंग से समझाया गया तथा सिद्ध किया गया है।

लेखक डॉ. दीपक कुमार श्रीवास्तव, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ के सहयुक्त महाविद्यालय, बप्पा श्री नारायण वोकेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ के गणित विभाग में रिडर है।

ज्यामिति, गणित की एक महत्वपूर्ण विधा है। द्विमीय एवं त्रिविमीय निर्देशांक ज्यामिति, इस विधा की दो अति आवश्यक धाराएं हैं। इस पुस्तक को भारत देश के सभी हिंदी भाषी राज्यों के उन छात्र–छात्राओं की समस्याओं को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है जो हिंदी माध्यम से इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरांत स्नातक स्तर पर किसी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय में प्रवेश लेते हैं। जहां पर उन्हें हिंदी भाषा में पुस्तकों की उपलब्धता के कारण आंगल भाषी पुस्तकों से पाठ्यक्रम को पढ़ना पड़ता है और समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो उनके परीक्षा परिणाम

पुस्तक का नाम- *ज्यामिति द्विमीय एवं त्रिविमीय* / प्रकाशक- पीयरसन एज्यूकेशन, दक्षिण एशिया की डॉर्लिंग किन्डरस्ली (भारत) प्रा. लि. / लेखक- डॉ. दीपक कुमार श्रीवास्तव, गणित विभाग / पृष्ठ सं. - 650 / मूल्य - ₹

समीक्षा : अशोक सेलवटकर, संपादक विज्ञान गरिमा सिंधु

को प्रभावित करता है। स्नातक स्तर पर गणित की पुस्तकें हिंदी माध्यम में पाठकों को सुलभ कराने के इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए लेखक की तरफ से किया गया यह एक प्रशंसनीय प्रयास है।

इस पुस्तक में प्रस्तुत सभी अध्याय, देश के हिंदी भाषी राज्यों के विश्वविद्यालयों में चलने वाले ज्यामिति आधारित पाठ्यक्रमों के अनुरूप हैं। प्रस्तुत पाठ्य–सामग्री में प्रयुक्त भाषा सरल, सुबोध, सुस्पष्ट तथा रेखाचित्रों से परिपूर्ण है। ज्यामिति के सिद्धांतों एवं नियमों को स्पष्ट करने के लिए अधिकाधिक साधित उदाहरणों का प्रयोग किया गया है। गणित के सभी तकनीकी शब्दों को वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रमाणित शब्द–संग्रह एवं शब्दावली के अनुसार प्रयोग में लाया गया है। अंकों, प्रतीकों एवं चिह्नों के लिए "अंतरराष्ट्रीय अंक प्रणाली" का प्रयोग किया गया है। सभी अध्यायों में साधित उदाहरणों के उपरांत अभ्यास (प्रश्नावली) पाठकों के अत्यधिक अभ्यास हेतु प्रस्तुत किए गए हैं। जो पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

○○○

लेखक–परिचय

1. डॉ. विजय कुमार उपाध्याय
राजेंद्र नगर हाऊसिंग कॉलोनी
के.के. सिंह कॉलोनी, पी. जमगोड़िया
वाया – जोघाडीह, चास, जिला – बोकारो
झारखंड, पिन कोड – 827013

2. डॉ. दीपक कुमार श्रीवास्तव, रीडर, गणित विभाग
बी.एस.एन.वी.पी.जी. कॉलेज, स्टेशन रोड
चारबाग, लखनऊ – 226001 (उ.प्र.)

3. डॉ. दिनेश मणि, डी.एस.सी., पूर्व संपादक
विज्ञान मासिक पत्रिका, 35/3
जवाहर लाल नेहरू रोड, जार्ज टाउन
इलाहाबाद – 211002 (उ.प्र.)

4. डॉ. एस. पी. सिंह, रीडर, प्राणि विज्ञान
डी.बी.एस. कॉलेज, देहरादून, (उत्तराखंड)

5. डॉ. सी. पी. सिंह, सहायक प्रोफेसर, जंतु विज्ञान
राजकीय महाविद्यालय, नारायणनगर
जिला – पिथौरगढ़ (उत्तराखंड)

6. डॉ. दीपक कोहली
5/105, विपुल खंड, गोमती नगर
लखनऊ – 226010

7. डॉ. आर. एस. सेंगर और विवेकानंद प्रताप राय
टिशु क्लचर लैब, बायोटैक्नोलॉजी महाविद्यालय
सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, मेरठ – 250110 (उ.प्र.)

8. श्री जगनारायण
ईशान स्टूडियो, दुकान सं – 20
श्री विश्वनाथ मंदिर, काशी हिंदु विश्वविद्यालय
वाराणसी, (उ.प्र.)

9. डॉ. जे. एल. अग्रवाल
3, ज्ञान लोक, मयूर विहार
ई–शास्त्री नगर, मेरठ – 250110 (उ.प्र.)

10. डॉ. हंसराज पाल
एच.बी.–19, एच.आई.जी. नालंदा परिसर
केसरबाग, चमेली देवी स्कूल, इंदौर (म.प्र.)

11. नरेश चंद्र तिवारी, तकनीकी अधिकारी
ई. वनस्पति उद्यान राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान
संस्थान, लखनऊ – 226010, (उ.प्र.)

12. डॉ. रामप्रसाद सिंह, भौतिकी विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार

13. डॉ. के. मोहन राव
केंद्रीय रेशम बोर्ड, बी.टी.एम. लेआउट
मडिवला, बेंगलूरु – 560068 (कर्नाटक)

14. डॉ. सुशांत पुणेकर, सहायक प्राध्यापक (प्राणिशास्त्र)
शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
छिंदवाड़ा (म.प्र.)

15. डॉ. वीरेंद्र कुमार, सस्य विज्ञान संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान, पूसा
नई दिल्ली – 110012

16. श्री मुकुंद नीलकंठ जोशी, रीडर (पूर्व)
भूविज्ञान डी.बी.एस. महाविद्यालय
देहरादून, (उत्तरखंड)

17. डॉ. नवीन कुमार बौहरा
प्लाट नं 389, स्ट्रीट नंबर 10 मिल्कमैन कॉलोनी
पाल रोड, जोधपुर (राजस्थान)

18. डॉ. ए. के. चुतर्वेदी
26, कावेरी एन्केलेव, फेज–II
स्वर्ण जयंती नगर के पास, रामघाट रोड
अलीगढ़ – 202001 (उ.प्र.)

19. एस. सी. सक्सेना, उपनिदेशक (पूर्व),
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग नई दिल्ली
BB-35F, जनकपुरी, नई दिल्ली–110058

○○○

आयोग के प्रकाशन

शब्दसंग्रह, शब्दावलियां

क. बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह

विज्ञान खंड 1, 2 (संशोधित संस्करण)	174.00
मानविकी और सामाजिक विज्ञान खंड (1, 2)	292.00
मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	350.00
आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)	48.50
इंजीनियरी (सिविल, विदयुत्, यांत्रिक)	340.00
पशु चिकित्सा विज्ञान	82.00
प्राणि विज्ञान	311.00
मुद्रण इंजीनियरी	48.00

ख. विषयवार शब्दावलियां (अंग्रेजी-हिंदी)

भौतिकी	
अर्धचालक शब्दावली	140.00
गृहविज्ञान	
गृहविज्ञान शब्द-संग्रह	60.00
रेशम शब्द-संग्रह	50.00
जीव विज्ञान	
वानिकी शब्द-संग्रह	447.00
कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह	62.00
कोशिका तथा अणु जैविकी शब्द-संग्रह	348.00
प्रशासन	
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	20.00
प्रशासनिक शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	20.00
रसायन विज्ञान	
रसायन शब्द संग्रह	592.00
इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली	55.00
वाणिज्य	
पूंजी बाजार एवं संबद्ध शब्दावली	79.00
वाणिज्य शब्दावली	259.00
कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी	
कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह	231.00
इंजीनियरी	
इलेक्ट्रॉनिक शब्दावली	349.00
भूगोल	
जलवायु विज्ञान शब्दावली	131.00
प्राकृतिक विपदा शब्दावली	17.00
भू-विज्ञान	
अनुप्रयुक्त भूविज्ञान शब्दावली	115.00
आर्थिक भूविज्ञान शब्दावली	75.00
सामान्य भूविज्ञान शब्दावली	101.00
भूविज्ञान शब्द-संग्रह	88.00

3563 HRD/15—14A

भू-भौतिकी शब्दावली	67.00
खनिज विज्ञान शब्दावली	130.00
खनन एवं भूविज्ञान शब्द-संग्रह	32.00
जीवाश्म विज्ञान शब्दावली	129.00
शैल विज्ञान शब्दावली	82.00
संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली	73.00
संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह	15.00
पत्रकारिता	
पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली	12.25
प्रसारण तकनीकी शब्दावली	310.00
गणित	
गणित शब्द-संग्रह	143.00
आयुर्विज्ञान	
आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एवं वाक्यांश (अंग्रेजी-तमिल-हिंदी)	279.00
औषधि प्रतिकूल प्रतिक्रिया शब्दावली	273.00
राजनीति	
संसदीय कार्य शब्दावली	130.00
गुणता नियंत्रण	
गुणता नियंत्रण शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)	38.00

ग. विषयवार पारिभाषा कोष (अंग्रेजी-हिंदी)

नृविज्ञान	
सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश	24.00
पुरातत्व विज्ञान	
पुरातत्व विज्ञान परिभाषा कोश	509.00
कला एवं संगीत	
पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश	28.55
जैविकी (जीवविज्ञान)	
कोशिका जैविकी परिभाषा कोश	121.00
वनस्पति विज्ञान	
वनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश (संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण)	75.00
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश	75.00
पादपरोगविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश	80.50
रसायन	
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश	25.00
उच्चतर रसायन परिभाषा कोश	17.00
धातुकर्म परिभाषा कोश	278.00
वाणिज्य	
वाणिज्य परिभाषा कोश	24.70
अर्थशास्त्र	
अर्थमिति परिभाषा कोश	17.65
इंजीनियरी	
सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश	61.00
विद्युत् इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00
यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश-I	84.00
भूगोल	
मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश	231.00
भू-विज्ञान परिभाषा कोश	53.00
पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश	173.00
शैल विज्ञान परिभाषा कोश	153.00
संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश	13.00
कृषि	
कृषि कीट विज्ञान परिभाषा कोश	75.00
सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश	125.00
मृदा विज्ञान परिभाषा कोश	77.00

3563 HRD/15—14B

विधि		**दर्शन शास्त्र**	
अंतर्राष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश	344.00	दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश	198.00
पत्रकारिता		भारतीय दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश खंड 3	136.00
पत्रकारिता परिभाषा कोश	87.50	**भौतिकी**	
प्रबंध विज्ञान		तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश	10.00
प्रबंध विज्ञान परिभाषा कोश	170.00	भौतिकी परिभाषा कोश	700.00
गणित		**प्राणि विज्ञान**	
गणित परिभाषा कोश	203.00	प्राणि विज्ञान परिभाषा कोश	216.00

घ. क्षेत्रीय भाषा शब्दावलियां

आयुर्विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	450.00	भौतिक विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	203.00
राजनीति विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	186.00	भूगोल शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	515.00
इतिहास शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	404.00	अर्थशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	185.00
गणित शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	189.00	भू-विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	306.00
प्राणिविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	205.00	शिक्षा शब्द संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	97.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	162.00	समाजशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	118.00
मनोविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	108.00	राजनीतिक विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	211.00
अर्थशास्त्र शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	183.00	पुरातत्व विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	157.00
रसायन शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	137.00	गणित शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	35.00
वनस्पति विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	208.00	प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	720.00
शिक्षा विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	137.00	भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	652.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	390.00	प्राणिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	417.00
दर्शन शास्त्र शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	61.00		

च. संदर्भ ग्रंथ

ऐतिहासिक नगर	195.00	कोयला (एक परिचय) परिवर्धित संस्करण	425.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00	रत्न विज्ञान (एक परिचय)	115.00
समुद्री यात्राएं	79.00	वाहितमल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
विश्व दर्शन	53.00	पर्यावरणीय प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन	23.25
अपशिष्ट प्रबंधन	17.00	भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबंधन	540.00
कोयला (एक परिचय)	294.00	भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन	559.00

2 दूरिक एवं 2 मानकित समष्टियों में संपात एंव स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00	पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन	367.00
भारत में प्याज एवं लहसन की खेती	82.00	स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन	176.00
पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग	60.00	भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण	343.00
ठोस पदार्थ यांत्रिकी	995.00	भविष्य की आशा : हिंद महासागर	154.00
वैज्ञानिक शब्दावली : अनुवाद एवं मौलिक लेखन	34.00	भारतीय कृषि का विकास	155.00
		विकास मनोविज्ञान भाग-1	40.00
मृदा-उर्वरता	410.00	विकास मनोविज्ञान भाग-2	30.00
ऊर्जा-संसाधन और संरक्षण	105.00	कृषिजन्य दुर्घटनाएं	25.00
पशुओं के कवकीय रोग; उनका उपचार एवं नियंत्रण	93.00	इलेक्ट्रॉनिक मापन	31.00
		वनस्पतिविज्ञान पाठमाला	16.00
परा[illegible]मितीय फलन	90.00	इस्पात परिचय	146.00
सामाजिक एवं प्रक्षेत्र वानिकी	54.00	जैव-प्रौद्योगिकी : अनुसंधान एवं विकास	134.00
विश्व के प्रमुख धर्म	118.00	विश्व के प्रमुख दार्शनिक	433.00
सैन्य विज्ञान पाठ संग्रह	100.00	प्राकृतिक खेती	167.00
सूक्ष्म तरंग इंजीनियरी	470.00	हिंदी विज्ञान पत्रकारिता : कल, आज और कल	167.00
लैटर प्रैस मुद्रण	270.00	मानसून पवन : भारतीय जलवायु का आधार	112.00
लोहीय तथा अलोहीय धातु	68.00	हिंदी में स्वतंत्रता परवर्ती विज्ञान लेखन	280.00
बाल मनोविकास	58.00	पृथ्वी : उद्भव और विकास	86.00
समकालीन भारतीय दर्शन के कुछ मानववादी चिंतक : तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन	153.00	इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी	90.00
मैग्नेसाइट : एक भूवैज्ञानिक अध्ययन	214.00	पृथ्वी से पुरातत्व	40.00
मृदा एवं पादप पोषण	367.00	द्रवचालित मशीन	66.50
नलकूप एवं भौमजल अभियांत्रिकी	398.00	भारत के सात आश्चर्य	335.00
विश्व के प्रमुख धर्मों में धर्मसमभाव की अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन	490.00	पादप सुरक्षा के विविध आयाम	360.00
		पादप प्रवर्धन एवं पौधशाला प्रबंधन	403.00
		मृदा संरक्षण एवं प्रबंधन	प्रकाशनाधिन

OOO

ग्राहक फार्म

सेवा में :
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिम खंड-7 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली- 110066

महोदय,

कृपया मुझे **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए .....से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .....दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम .....

पूरा पता .....

.....

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्क :	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 14.00	पौंड 1.64	डालर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 50.00	पौंड 5.83	डालर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 8.00	पौंड 0.93	डालर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 30.00	पौंड 3.50	डालर 2.88

डिमांड ड्राफ्ट ''अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग'' के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण-पत्र भी संलग्न करें:

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी/श्रीमती/श्री..... इस विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के ..... विभाग का/छात्र/की छात्रा है।

हस्ताक्षर

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)
(मोहर)

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25 प्रतिशत की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी किया जाता है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिक शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T., New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात् ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉर्वर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें सड़क परिवहन से भेजी जाती हैं तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. सड़क परिवहन से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके स्वयं पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।

8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

9. पुस्तकों की पैंकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

10. सामान्यत: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नहीं होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में अन्य पुस्तकें ही दी जाएंगी।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता
1.	**प्रकाशन नियंत्रक** प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय के पीछे सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
2.	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड्ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली - 110001
3.	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता - 700001
4.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई - 400020
5.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली - 110001
6.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली - 110003
7.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, शहाजहां रोड धौलपुर हाउस, नई दिल्ली - 110001

MGIPRRND—3563 HRD/15—700 Copies

© भारत सरकार

प्रकाशन नियंत्रक
संयुक्तांक-86-87
(जुलाई–सितम्बर, 2013)
तथा
(अक्टूबर-दिसंबर, 2013)

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित
— 2015